शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No. 2456-625 X

वर्ष 4 अंक 16 त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका 10 अक्तूबर 2020

मुख्य संपादक

डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक

डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक

प्रो.सती.के

डॉ.एस. लीलाकुमारी अम्मा

श्रीमती वनजा.पी

संपादक मंडल

प्रो.एस.कमलम्मा

डॉ.जी.गीताकुमारी

डॉ.गिरिजा.डी

डॉ.बिन्दु.सी.आर

डॉ.षीना.यू.एस

डॉ.सुमा.आई

डॉ.एलिसबत्त जोर्ज

डॉ.लक्ष्मी.एस.एस

डॉ.धन्या.एल

डॉ.कमलानाथ.एन.एम

डॉ.अश्वती.जी.आर

सूचना : पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के हैं। उनसे संपादक तथा प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संपादकीय : 3

धरती का धनी कथाकार, फणीश्वरनाथ रेण : डॉ.श्रीलता.पी 6

रसप्रिया :कला और प्रेम की अद्भुत रचना : डॉ.के.अजिता 9

'ठेस' शीर्षक की सार्थकता : डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा 12

सही उत्तर चुनें : डॉ.पी.लता 13

क्रांतिकारी रचनाकार फणीश्वरनाथ रेणु : डॉ. बिंदु वेलसर 14

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला-आँचल' : डॉ.पी.के.प्रतिभा 19
एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

रेणु की नैनाजोगिन : डॉ.चन्द्रवदना.जी 26

क्रांतिकारी के रूप में फणीश्वरनाथ रेणु : डॉ. बिंदु .सी.आर 29
('नेपाली क्रांति-कथा' रिपोर्ताज के आधार पर)

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'परती परिकथा': डॉ.पी.के.प्रतिभा 32

रेणु की कहानियों में देशीयता : डॉ.गीताकुमारी.जी 35

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में लोक जीवन : डॉ.एलिसबत जॉर्ज 39

ग्रामांचल का कथाकार श्री फणीश्वरनाथ रेणु- : डॉ. धन्या एल 42
'पंचलाइट' के संदर्भ में

कहानीकार फणीश्वरनाथ रेणु : रंजिताराणी.के.वी 45

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों की भाषा : रेश्मा .एम .एल 48

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ डी.वी.सुरेख ई.एन फोण्ट में वर्ड या पेजमेकर फाइल में भेजें। रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता भी अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु. 100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

सहकर्मी पुनरवलोकन समिति :

डॉ.टी.के.नारायण पिल्लै

डॉ.के.श्रीलता

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य। फोन : 0471 - 2332468, 9946253648

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

संपादकीय

फणीश्वरनाथ रेणु की साहित्य - साधना

हिन्दी के प्रथम आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु की साहित्य-साधना का आरंभ कविता से ही हुआ था। बिहार के पूर्णिया जिले से निकले कई साप्ताहिकों में रेणुजी की तुकबंदियाँ और मुक्त छंद प्रकाशित होते थे। फिर कथा साहित्य पर उनका ध्यान केन्द्रित हुआ। कवि से कथाकार के रूप में उनके परिवर्तित होने का एक विशेष कारण है - सन् 1942-1943 वर्ष में राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर सतीनाथ भादुडीजी के साथ रेणुजी भगलपुर सेंट्रल जेल में कैदी बने थे। अंग्रेज़ सरकार की कृपा से राजनैतिक कैदियों को थोड़ी - बहुत सुविधाएँ प्राप्त होती थीं। जेल में व्यायाम, खेलकूद और मनोरंजन के साथ - साथ कई प्रकार की गोष्ठियाँ और कक्षाएँ चलायी जाती थीं। काव्य - पाठ के प्रोग्राम में रेणुजी ने जो कविता पढ़ी, उसे सुनने के बाद भादुडीजी ने यह सुझाव दिया कि "जब तुम बातें करते हो, तो सभी को बांध लेते हो। इसलिए कहानियाँ लिखो, उपन्यास लिखो।" तीन वर्षों के जेल जीवन के दौरान भादुडीजी ने 'जागरी' उपनायास लिखा और रेणुजी ने 'मैला आंचल' उपन्यास के कथानक को मन में रूप दिया। भादुडीजी के 'जागरी' उपन्यास को साहित्य-संसार ने स्वीकार भी किया।

रेणुजी ने भगलपुर सेंट्रल जेल में जो कहानी सुनायी, वही 'मैला आंचल' उपन्यास का आधार बनी। उन्होंने कहानी इस ढंग से पढ़ी, मानो आँखों देखे हाल का वर्णन हो रहा हो। कहानी निम्न लिखित थी -

पूर्णिया जिले में बड़े भूमिपतियों के कामत (कृषि क्षेत्र के बीच अवस्थित आकास्मिक निवास स्थान) हुआ करते हैं। जाड़ों के दिनों में चिड़ियों का शिकार करने और तफरीह केलिए लोग कामत में जाते हैं। रेणुजी के मित्र श्री देवनाथ राय जनता पार्टी के विधायक थे। उन्होंने रेणुजी को अपने कामत पर आने केलिए कई बार नियंत्रण दिया था। एक दिन रेणुजी अपने कुछ मित्रों के साथ कामत पर पहुँचे, किन्तु देवनाथ राय कहीं गये हुए थे। वे रायजी की प्रतीक्षा करके कुर्सी लेकर अलाव के पास बैठ गये। तब घोड़े की टाप सुनायी पड़ी। उस घोड़े की पीठ पर एक नौजवान बैठा हुआ था। उसने अंदर आकर रेणुजी और मित्रों से बातें कीं - "मैं प्रशान्त हूँ, मेड़िकल प्राक्टिशनर। बगल के गाँव में रहता हूँ। देवनाथ बाबू से मेरी भी अच्छी जान - पहचान है, इसलिए कभी - कभी मिलने चला आता हूँ।" बातचीत के दौरान किसी के आने की आहट सुनी तो वह उठकर थोड़ी दूर चलकर, फिर ओझल हो गया। देवनाथ राय कामत पर आये, तो रेणुजी ने कहा कि उनके डॉक्टर मित्र आये थे। तो रायजी का जवाब सुनकर वे अचंभित हो गये। जवाब था - "बेचारा प्रशान्त भला लड़का था। उनके माता - पिता की जानकारी नहीं थी। एक डॉक्टर के यहाँ उनका लालन - पालन हुआ था। एम.बी.बी.एस करने के बाद इस इलाके में 'काला आज़ार' का रिसर्च करने चला आया। दूर - दूर के गाँवों में भी रोगियों को

देखने जाता था। इसी बीच एक ज़मीन्दार की लड़की से प्रेम हो गया। ज़मीन्दार को यह रिश्ता पसंद नहीं था। लड़की गर्भवती हो गयी, तो ज़मीन्दार ने जहर दे दी। प्रशान्त ने यह बात जानकर आत्महत्या कर ली और तभी से उनकी आत्मा भटक रही है।'' डॉ. प्रशांत का यह वृत्तांत देवनाथ के मुँह से सुनकर रेणुजी और मित्रों के होश उड़ गये। प्रेतात्मा के भय से वे काँपने लगे। एक हफ्ते के शिकार का प्रोग्राम बनाकर वे वहाँ आये थे, किन्तु दूसरे दिन ही लौट गये।

रेणुजी की यह कहानी सुनकर जेल के कई व्यक्तियों ने इसकी सत्यता के बारे में पूछा, तो रेणुजी ने इस कल्पित कथा के सत्य होने का समर्थन किया। जेल में यह कहानी कहने के बाद के दिनों में डॉ.प्रशान्त उनकी आँखों में नाचता रहा। जेल से बीमार होकर रेणुजी पटना मेडिकल कॉलेज पहुँचे तो वहाँ डॉ. टी.एन.बानर्जी के हाउस सर्जन लड़के के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्होंने डॉ.प्रशान्त के व्यक्तित्व को रूपायित किया। यह लड़का 'मैला आंचल' उपन्यास का स्मरणीय पात्र डॉ. प्रशान्त बना। रेणुजी द्वारा जेल में सुनायी गयी कहानी की भाँति इस उपन्यास में भी डॉ. प्रशान्त 'काला आज़ार' संबन्धी रिसर्च करने गाँव आता है, गाँव के ज़मीन्दार की लड़की से उसका प्रेम होता है और यह लड़की गर्भवती बनती है ज़मीन्दार उसे ज़हर देने का प्रयास करता है।

'मैला आंचल' उपन्यास की रचना पूरी हुई तो नये ढंग का उपन्यास कहकर उसे प्रकाशित करने को कोई तैयार नहीं हुए। आखिर 'राजकमल प्रकाशन, दिल्ली' के ओमप्रकाशजी ने सन् 1954 में उसका प्रकाशन किया। 'साहित्य अकादेमी' द्वारा वह पुरस्कृत हुआ और 'डॉक्टर बाबू' नाम से उसका फिल्मीकरण भी हुआ। प्रेमचन्द के 'गोदान' के बाद रेणुजी के 'मैला आंचल' को युगांतरकारी उपन्यास कहा जाता है।

अपने उपन्यास को 'आंचलिक उपन्यास' घोषित करके प्रकाशित करने का श्रेय फणीश्वरनाथ रेणु को है। उन्होंने 'मैला आंचल' की भूमिका में लिखा - "यह है मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया।" 'मैला आंचल' के पूर्व भी अंचल केन्द्रित उपन्यास हिन्दी में प्रकाशित हुए थे, किन्तु रेणुजी की इस घोषणा के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य संसार ने 'मैला आंचल' को हिन्दी का सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास और 'रेणुजी' को पहले आंचलिक उपन्यासकार स्वीकार किये। निर्मल वर्मा के मत में "रेणुजी ने जिस सूक्ष्म संवेदना और गहरे लगाव से बिहार के एक अंचल पूर्णिया की ज़मीन को कुरेदा था, उसके फैलाव को महीन और मांसल छवियों में ध्वनित किया था, उसकेलिए गद्य की भाषा को अप्रत्यशीत रूप से काव्यात्मक मुहावरे में ढाला था।"

'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद रेणुजी का 'परती परिकथा' उपन्यास सन् 1957 में प्रकाशित हुआ। इसमें परानपुर नामक छोटे गाँव का चित्रण है। उनका तीसरा उपन्यास 'दीर्घतपा' (1963) मुख्यतया शहरी जीवन से संबद्ध है। शहर की एक कल्पित समाज सेवी संस्था का इसमें चित्रण हुआ है। रेणुजी के चौथे उपन्यास 'जुलूस' (1963) का कथानक बिहार के पूर्णिया जिले के नये बसे हुए नबीनगर (नोबीन नगर) और गोड़ियार इन दो अंचलों पर घूमता है।

रेणुजी का पाँचवाँ उपन्यास 'कितने चौराहे' (1966) भी शहरी जीवन पर आधारित है। इसमें

विप्लवी युवकों, ममतामयी माताओं, प्रतिस्निग्ध बहनों, आवारा टाइप के कस्बाई छोकरों के खंड़ चित्र दिये गये हैं। रेणुजी की हाईस्कूल शिक्षा, बिहार के अररिया के स्कूल में हुई। अतः 'कितने चौराहे' के परिवेश के रूप में अररिया भी है। अपनी पत्नी लतिकाजी की प्रेरणा से बच्चों केलिए लिखित कविता है 'मेरा गीत सनीचर', जो 'नंदन' बाल पत्रिका में छपी थी।

सन् 1973 में प्रकाशित रेणुजी का 'कलंक मुक्ति' उपन्यास 'हिन्दी पोकट बुक्स, दिल्ली' द्वारा प्रकाशित है।

'ठुमरी', 'अगिनखोर', 'आदिम रात्रि की महक', 'एक श्रावणी दोपहरी की धूप' आदि कहानी संकलनों में गाँव के बदलते परिदृश्य और ग्रामीण जीवन में आधुनिकता के समावेश का चित्रण हुआ है। कई कहानियों में ग्रामीण संस्कृति के टूटने तथा ग्रामीणों के शहरी संस्कृति की ओर आकर्षण के स्वर मुखरित हैं।

'ठुमरी' एक प्रकार का चलता गाना है। रेणुजी के 'ठुमरी' कहानी संग्रह में नौ कहानियाँ संकलित हैं, जिनका अंतरंग एक ही है और जिनमें जीवन के सहज लय को मोहक सुरों में बांधने का कलात्मक प्रयास हुआ है। एकाधिक कथाओं में एक ही विशेष मुहूर्त को विभिन्न परिवेश में रखकर रूपायित किया गया है, किन्तु पुनरुक्ति दोष से बच गया है। इस संकलन की 'तीसरी कसम' शीर्षक कहानी का फिल्म जगत के प्रयोगशील डयरक्टर श्री बाब भट्टाचार्य और लोकप्रिय गीतकार शैलेन्द्र के प्रयास से फिल्मीकरण हुआ, जिसे राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

सन् 1975 में बाढ़ के कारण हुई मानव यातना के आँखों देखा संस्मरणात्मक रिपोर्ताज है 'ऋणजल घनजल'।

नेपाल के कुछ व्यक्तियों से रेणुजी के पिता का आत्मीय संबन्ध था। रेणुजी की ज़िन्दगी के कुछ वर्ष विराटनगर में गुज़रे थे, जहाँ कोइराला परिवार से परिचय प्राप्त हुआ था। सन् 1950 में नेपाल की जनता को राणाशाही के अत्याचारों से मुक्ति दिलाने हेतु रेणुजी ने नेपाल की क्रांति में सक्रिय योगदान दिया था। उनके तत्कालीन अनभवों का शब्द चित्र है 'नापाली क्रांति कथा'।

सन् 1975 में रेणुजी ने 'सफेद हाथी' उपन्यास की रचना पूरी की, किन्तु उसकी पांडुलिपि की चोरी हुई।

4 मार्च 1921 को बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव में जन्मे आंचलिक कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु 11 अप्रैल 1977 को स्वर्गस्थ हुए।

♦ संपादक
डॉ.पी.लता
मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी
(पूर्व अध्यक्षा, हिन्दी विभाग,
सरकारी महिला महाविद्यालय)
तिरुवन्तपुरम, केरल राज्य।
फोन : 9946253648

सूचना

NET (हिन्दी) तथा Spoken Hindi की कक्षाओं में प्रवेश पाने को इच्छुक व्यक्ति संपर्क करें -

फोन : 9946253648, 0471 - 2332468

धरती का धनी कथाकार, फणीश्वरनाथ रेणु

♦ डॉ.श्रीलता.पी

यह कहना फणीश्वरनाथ रेणु के महत्व का प्रमाण है:

"फणीश्वर नाथ रेणु, जो न होते तो अपने देश की आत्मा से हम कुछ और कम जड़े होते।" ऐसे बहुत कम लेखक होते हैं जो अपने जीते जी ही किंवदंती बनकर अपने समय के रचनाकारों केलिए प्रेरणा और जलन दोनों का कारण बन जाते हैं। रेणु ऐसे एक लेखक थे।

रेणु के लेखन में दृश्य कभी फिल्म की तरह पाठकों के आगे से गज़रते हैं। चरित्र की एक-एक रेखा जैसे खुलती जाती है।

'मैला आंचल' आज़ादी के बाद के बिहार के गाँवों का एक भरा-पूरा चेहरा है। कराहनेवाली चिड़िया सिर्फ रेणु की कहानी में ही मिल सकती है। अज्ञेय तो खैर उनके घनिष्ठ मित्र ठहरे। अज्ञेय के द्वारा उन्हें 'धरती का धनी कथाकार' कहा जाना उतनी बड़ी बात नहीं थी। लेकिन रेणु की साहित्यिक धारा से बिल्कुल अलग लिखनेवालों को भी उनकी कलम की ताकत से इनकार नहीं था।

रेणु ने 'नई कहानी आंदोलन' को खारिज किया था। इस आंदोलन को शुरू करने में शामिल हुए और नगरीय सभ्यता के मशहूर कहानीकार बने कमलेश्वर ग्रामीण कथाकार रेणु के बारे में कहते हैं, 'बीसवीं सदी का यह संजय रूप, रंग, गंध, नाद, आकार और बिंबों के माध्यम से महाभारत की सारी वास्तविकता... सबको बयान करता है।' निर्मल वर्मा भी रेणु के समकालीन कथाकार रहे हैं। एकांत के एकालाप और निर्जन को अपने शब्दों में बहुत एहतियात से रचनेवाले इस लेखक के रेणु के बारे में जो विचार थे वे कम चौंकानेवाले नहीं हैं–"मानवीय दृष्टि से संपन्न इस कथाकार ने बिहार के एक छोटे भूखंड की हथेली पर किसानों की नियति की रेखा को उजागर कर दिया था।"

रेणु का एकाएक उभरना मठों में बैठे लेखकों केलिए परेशान करनेवाला था। उन्हें प्रसिद्धि जितनी जल्दी मिली, इलजाम भी उतनी आसानी से हवा में गूँजने लगे। ऐसा भी कहा गया कि 'मैला आंचल' चोरी की रचना है।

रेणु का समय प्रेमचंद के ठीक बाद का था। तब तक एक तरह के आभिजात्यबोध का साहित्य पर कब्जा हो चुका था। भाषा शब्दों और प्रयोगों के खेल में फँसने लगी थी। स्वतंत्रता के बाद नया जीवन था। प्रगति के नए सपने थे। ऐसे में सबसे आसान था लीक पर चलकर शहरी और मध्यवर्गीय जीवन की कहानियाँ लिखते जाना। पर रेणु ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने अपने भीतर से निकलती उस आवाज़ को सुना, आज़ादी के बाद दम तोड़ते हुए गानों की कराह सुनी और अपनेलिए रास्ता चुन लिया।

सन् 1954 में जब 'मैला आंचल' आया तो रेणु के पहले उपन्यास के रूप में इसने सबको चकित कर दिया था। नामवर सिंह ने तब कहा था, "पहले उपन्यास के रूप में इसकी परिपक्वता सचमुच चौंकानेवाली है। पर धीरे-धीरे यह भेद खुला कि यह उनकी पहली

कृति नहीं थी। वे चुपचाप साहित्य की दुनिया से एकदम किनारे रहते हुए पिछले 10 वर्षों में कहानियाँ लिखे जा रहे थे।"

रेणु के 'मैला आंचल' पर चोरी की रचना का आरोप होने का कारण यह था कि इस पर बंगला लेखक सतीनाथ चौधरी के 'धोढाई चरितमानस की छाया थी। आरोप कुछ दूसरी शक्लों में भी था, जैसे कि रेणु में अपना तो कुछ है ही नहीं या प्रेमचंद के गाँवों को उन्होंने अपनी प्रसिद्धि के रास्ते केलिए अपना कर लिया। 'मैला आंचल' पर रेणु को कई तरह से घेरा गया। इस दौरान कई दूसरे लेखकों का भी उल्लेख हुआ, जैसे- सांस्कृतिक गरिमा केलिए शोलोखोव का, तो स्थानीयता के प्रभाव केलिए बंगला लेखक ताराशंकर बंदोपाध्याय का। जाहिर है रेणु आहत भी हुए होंगे। आत्मा को तकलीफ भी पहुंचती होगी, पर उन्होंने विरोध जताना उचित नहीं समझा।

आरोपों की आंधी जैसे चली थी वैसे ही अचानक थम भी गई। रेणु नामक इस लेखक की आंधी में प्रांत और भाषा की दीवारें जैसे ढह पड़ी थीं।

जब हम पढ़ी-सुनी चीज़ों को वैसे का वैसा ही रच जाते हैं तो वह नकल होती है। जब हम सारे संचित को किसी खास परिदृश्य में रखकर सोचते हैं, उसे मिलाकर नया बनाते हैं तो वह कुछ अलग-सा होता है। गाँव वही थे, गाँववाले भी बहुत हद तक वही, पर रेणु के अनुभव यहाँ अपने थे। यहाँ अगर प्रेमचंद की रचनाओं में दिखनेवाला मोहभंग था, तो साथ ही विरासत को थामे रहने की उदासी में भी लोकधुनों और लोकगीतों को गुनगुनाने, राह खोजनेवाला जीवट भी था।

रेणु की लेखनी को देखकर ऐसा लगता है, जैसे प्रेमचंद की बनायी खाकों में रेणु ने अपनी रचनाओं से रंग भरे हो, प्रेम, सद्भावना, सहभागिता के गाढ़े रंग। 'गोदान' के बाद 'मैला आंचल' ही वह दूसरा उपन्यास था, जिसने उसी के तर्ज पर उसी गति से चौतरफा तारीफ पाई थी।

अधिकतम विधाओं में कुछ न कुछ लिखनेवाले रेणु ने आत्मकथा नहीं लिखी। शायद इसलिए कि उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में खुद को पूरी तरह उँड़ेल दिया था। 'अपने बारे में जब भी कुछ कहना चाहता हूँ, जीबीएस (जार्ज बर्नाडिशां) का चेहरा सामने आ जाता है। आँखों में व्यंग्य और दाढ़ी में मुस्कराहट लिए और कलम रुक जाती है।' उनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थ परंपरा को आगे बढ़ाता है।

'रसप्रिया' की आँखों में रेणु

आज़ादी के बाद उभरे, प्रयोगधर्मी ज़मीन से जुड़े लेखकों में प्रमुख स्थान रखनेवाले रेणु के सबसे लोकप्रिय कथा संग्रह 'ठुमरी' की पहली कहानी 'रसप्रिया', जो कि संगीत, राग और प्रेम के सौंदर्य की असाधारण गाथा है। रेणु के अपने गाँव के लोगों के साथ जैसे संबंध रहे, वहाँ के संगीत-नृत्य, खेत-खलिहानों में वे जिस तरह रमे रहे, वे विभिन्न सांस्कृतिक अनुभवों की संगीतमय अभिव्यक्ति अपनी कहानियों, खास तौर पर 'रसप्रिया' कहानी में करते हैं।

इस कहानी में तीन पात्र हैं। दाएँ हाथ की टेढ़ी ऊँगली के चलते ठीक से मृदंग न बजा पानेवाला दीनहीन पंचकौडी मिरदंगिया, प्रकट रूप में छाया मात्र दिखनेवाली, पर भाव रूप में उपस्थित सबसे सशक्त रमपतिया और उपेक्षा के दौर में बगैर किसी गुरु से

सीखे एकदम शुद्ध रसप्रिया गानेवाला चरवाहा लड़का मोहना।

मोहना केलिए मिरदंगिया अपरिचित नहीं है। वह उसके बारे में सालों पुरानी अंतरंग बातें जानता है। पहचान बस उसकी टेढी ऊँगलियाँ तथा गले में लटका मृदंग हैं। आठ सालों तक रमपतिया के पिता से पंचकौडी ने तालीम ली, अपनी जाति छुपाकर प्रेम किया। जब गुरु ने अपनी बेटी से उसकी शादी करनी चाही तो उसने सच बोलना मुनासिब समझ वहाँ से भाग खड़ा हुआ। सालों के बाद एक बार गुलाब बाग मेले में मिले भी तो उलाहना और लांछेनों के बीच। इसी मेला में पंचकौडी की उंगलियाँ टेढ़ी हो गई।

कोसी की बाढ़ में सब कुछ गंवा देने के बाद ज़मींदारों के घर के बर्तन बासन करते हुए रमपतिया की कोख से मोहना का जन्म होता है। उधर पंचकौडी एक युग से गले में मृदंग लटकाकर भीख माँग कर जीवन यापन कर रहा है।

अब फिर एक दिन इन तीनों को अप्रत्याशित रूप में अचानक मिलानेवाला कारक भी रसप्रिया ही है, जो मोहना के माध्यम से पंचकौडी मिरदंगिया और रमपतिया के सुप्त प्रेम को सजल सप्राण कर देता है। गुनी आदमी के साथ रसप्रिया गाकर मोहना अत्यंत प्रसन्न है। मिरदंगिया उस पर अपना सारा लाड़ निछावर करता है। उसको लगता है कि टेढी ऊँगलियाँ अब सीधी होने लगी हैं।

रमपतिया की नज़र में बेइमान गुरुद्रोही झूठा है। परंतु उसमें इतनी गहरी नैतिकता भी है कि अपनी जाति के बारे में झूठ बोलकर रमपतिया का प्रेम हासिल कर लेना उसे स्वीकार नहीं है।

इस कहानी में अपने समाज से रेणु का गहरा अंतरंग रिश्ता प्रकट है। जीवन भर कितने भी अभाव में मिरदंगिया रहा हो, इसके मन का उदात्त भाव कभी कम नहीं हुआ। अग्रणी पात्रों के माध्यम से अजेय रागात्मक मूल्यों में भरोसा लौटने केलिए यह कहानी बार-बार याद की जाएगी।

इस कहानी की सबसे मोहक विशेषता इसकी आंचलिकता है। आदि से अंत तक यह आंचलिकता प्राणधर्म की तरह सन्निविष्ट है।

पात्रों में, वातावरण में, कथा में, कथा की प्रस्तुति में, भाषा में - सब कुछ में आंचलिकता प्रकट है। रसप्रिया के अनेक गीतों का लय पाठक के मन और कानों में गूँजता रहता है। ग्रामीण समाज में लोक संस्कृति का अपना एक अलग महत्व है। अब वह लोक संस्कृति एवं लोकगीत, ग्रामीण समाज से धीरे-धीरे ओझल होते जा रहे है। 'रसप्रिया' का मुख्य पात्र मिरदंगिया पूर्ण रूप से आंचलिक है और इस कहानी के संवाद भी आंचलिक हैं।

आज रेणु के नहीं होने के इतने साल बाद भी जब हम उनकी रचनाओं को देखते हैं तो मनोविज्ञान पर उनकी पकड़, गाँवों को देखने से ज़्यादा जीनेवाली प्रतिभा को लेकर चौंक पड़ते हैं। आज हमें रेणु की कमी ज़्यादा खलती है, क्योंकि इस दौर में गाँव पर लिखनेवाले लेखकों की संख्या दिन-ब-दिन कम हो रही है।

संदर्भ

'ठुमरी' कहानी संकलन, राजकमल प्रकाशन।

◆ असोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
श्रीशंकराचार्य संस्कृत विश्वविध्यलय,
क्षेत्रीय कार्यालय, एट्टुमानूर।

रसप्रिया कला और प्रेम की अद्‌भुत रचन

♦ डॉ.के.अजिता

फणीश्वरनाथ रेणु स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य का अग्रणी लेखक हैं। आलोचकों द्वारा प्रशंसित होने के कारण नहीं, अपनी रचनाओं में अन्तर्लीन स्वस्थ मानवीयता के बल पर ही वे अपने समकालीनों के आगे आए। इस संदर्भ में उनके शब्दों को उद्धृा करना संगत लगता है - "...साहित्य के राज़दार पंडित-कथाकार-आलोचकों ने हमेशा नाराज़ होकर मुझे- एक जीवनदर्शन हीन -अपदार्थ-अप्रतिबद्ध-व्यर्थ-रोमांटिक प्राणी-प्रमाणित किया है। ...सारे तालाब को गंदला करनेवाला जीव। इसके बावजूद कभी मुझसे इससे ज़्यादा नहीं बोल गया कि अपनी कहानियों में मैं अपने को ही ढूँढता फिरता हूँ - अपने को, ...अर्थात् आदमी को।" ('मेरी प्रिय कहानियाँ' की भूमिका)। अपने समकालीन नामी कथाकार उपनिवेशी आधुनिकता से ग्रस्त होते समय रेणु अपने को उपनिवेशवाद और उसकी सभ्यता से आज़ाद करने का प्रयास करते रहे। अपनी प्रकाशित पहली रचना 'विदापत-नाच' रिपोर्ताज (1944) में वे लिखते हैं कि पहले मैं रसप्रिया से जुड़ा रहा और अपने को सभ्य एवं शिक्षित समझकर उससे अलग हुआ। बाद में अपनी गलती महसूस करके फिर उससे फिदा- होने लगा। एक ओर वे अपनी धरती एवं समाज से इतना जुड़े रहे कि कोई भी प्रलोभन या शक्ति उन्हें उससे पृथक नहीं कर सके। इस तरह 'धरती के धनी' (अज्ञेय द्वारा दिया गया विशेषण) रेणु की अपनी स्पष्ट राजनीतिक समझ ने उनकी रचनाओं को गंभीर एवं कालजयी बना दिया। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान दो बार कारावास में रहे रेणु सन् 1952 तक राजनीति के सक्रिय कार्यकर्ता रहे। स्वतंत्र भारत के राजनीतिक दलों में उभरे गुटों से असंतुष्ट होकर उन्होंने अपने राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप की उपेक्षा की। उसके बाद भी वे राजनीतिक पक्षधरता एवं सोच में मिलावट करने को तैयार नहीं थे। पद्मा पुरस्कार का तिरस्कार करना इसका प्रमाण है।

कलाकार के आत्मसम्मान एवं स्वातंत्र्य को वे बड़ा मूल्य मानते थे। रचना, रचना में स्वातंत्र्य, अभिव्यक्ति की स्वाधीनता, रचनाकार की प्रतिबद्धता, कला के प्रति नागरी दृष्टि आदि को केन्द्र में रखकर उन्होंने रसप्रिया, ठेस, कलाकार, भित्तिचित्र की मयूरी, अगिनखोर, अग्निसंचारक जैसी कहानियों की रचना की।

'रसप्रिया' में रेणु ने कलाकार के आत्मसम्मान और कलाकार की प्रतिबद्धता के साथ जीवन के स्पंदन को याने प्रेम को प्रमुख मुद्दा बनाया है। इसलिए प्रस्तुत कहानी रचनाकार की रचनाधर्मिता की कहानी बन जाती है तथा मानव जीवन का केन्द्रीय रंग, प्रेम की कहानी भी है। कहानी का आरंभ कलाकार की प्रतिबद्धता को प्रश्रय देता है, जैसे- "धूल में पड़े कीमती पत्थर को देखकर जौहरी की आँखों में एक नयी झलक झिलमिला गयी अपरूप रूप!"

"चरवाहा मोहना छौंडा को देखते ही पँचकौडी मिरदंगिया के मुँह से निकल पड़ा अपरूप रूप!" (पृ-126)। पंचकौडी का अचंभित होना अपने इलाके में प्रचलित लोककला, जो विद्यापति के गीतों पर आधारित है, के लुप्त होने के प्रति विदापत नाच के कलाकार का दुख तथा प्रतिभावान लड़का मोहना को देखकर उसके (पंचकौडी मृदंगिया एवं रेणु) के मन में उभर आते

आनंद, आश्वासन एवं प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है। मूल गायन सीखने आये पंचकौडी ने गुरु से मृदंग सीख लिया अपनी जाति को छिपाके रखकर। अपने झूठ को छिपाने केलिए वहाँ से फरार हो गए पंचकौडी ने बाद में रमपतिया के साथ नंदबाबू का नाम जाड़कर इलजाम लगाया। इलजाम लगाते समय नंदबाबू के कलाप्रेम के बारे में वह खुद जानता भी था। फिर भी उसने रमपतिया की उपेक्षा की। "उसी रात रसपिरिया बजाते समय उसकी उँगली टेढी हो गयी थी। मृदंग पर जमनिका देकर वह परबेस का ताल बजाने लगा। नटुआ ने डढ़ मात्रा बेताल होकर प्रवेश किया तो उनका माथा ठनका। परबेस के बाद उसने नटुआ को झिड़की दी- 'एस्साला ! थप्पडों से गाल लाल कर दूँगा।'...और रसपिरिया की पहली कड़ी ही टूट गयी। मिरदंगिया ने ताल संभालने की बहुत चेष्टा की। मृदंग की सूखी चमड़ी जी उठी, दाहिने पूरे पर लावाफरही फूटने लगे और ताल कटतेकटते उसकी उँगली टेढ़ी हो गयी। झूठी टेढी उँगली !... हमेशा के लिए पंचकौडी की मण्ड़ली टूट गयी। धीरे-धीरे विद्यापति नाच ही उठ गया।"(पृ-131). सनकी पंचकौडी दो साल बाद लौट आया है। तब रसप्रिया की सुरीली रागिनी ताल पर आकर कट गयी। इससे पंचकौडी का पागलपन बढ़ जाता है। जब गायक की खोज करते पंचकौडी की नज़र मोहना पर पड़ी तब मोहना तन्मय होकर दूसरे पद की तैयारी कर रहा था। मोहना बेसुध होकर गाने लगा तब मिरदंगिया की आँखें उसे एकटक देख रही थीं और उसकी उंगलियाँ फिरकी की तरह नाचने को व्याकुल हो रही थीं। उसकी तेज़ी पर मोहना भी अचंभित हो रहा था। वह मोहना में रसप्रिया की परम्परा को आगे ले जाने में समर्थ युवा कलाकार को देखकर आनंदित होता है। उसे अपना आत्मीय स्वजन मानकर बेटा पुकारता है, उसकी तंदुरुस्ती पर अधिक ध्यान भी देता है। पंचकौडी अपनी पूंजी मोहना को सौंपकर आगे 'मैं पदावली नहीं, रसपिरिया नहीं, निरगुन गाऊँगा कहकर बिदा लेता है। झूठ को छिपाते वक्त भी पंचकौडी अपने आत्मसम्मान पर खरोंचे पड़ने नहीं देता है। जब मोहना तुम भीख मांगनेवाला कहता है तब उसके मन को ठेस लगती है। उसे कथाकार के शब्दों में ही देखिए उसके मन की झाँपी में कुण्डलीकार सोया हुआ साँप फन फैलाकर फुफकार उठा..।" (पृ-130). अपना आत्मसम्मान नहीं गंवानेवाले रेणु का पात्र भी उसे सुरक्षित रखता है। सबकुछ पंचकौडी सह लेता है, पर 'किसी के आगे हाथ फैलानेवाला' संज्ञा वह बर्दाश्त नहीं कर सकता है। अपनी रचनाओं में अपने आत्मांश को मानते रेणु समझौता करने को तैयार नहीं होते थे। इसलिए वे पद्मा पुरस्कार से ही नहीं, बल्कि विधान सभा चुनाव लड़ते समय भी समझौता नही करते थे।

कहानी का दूसरा पहलू प्रेम है। प्रेम जीवन के रंग, रस सबकुछ है। जीवन के रंग-रस से हीन साहित्य मात्र अक्षरों की भीड़ होता है। उसमें कला-सौंदर्य की गुंजाइश नहीं होती है, निस्पंद जीवन के समान वह भी निष्प्राण होता है। रमपतिया पर आरोप लगाकर भाग जाते पंचकौडी की कला भी सूख जाती है, मृदंग पर थिरकने वाली उंगली टढ़ी हो जाती है। उसके बाद मृदंग उसकेलिए भीख मांगने का एक उपकरण या बहाना मात्र रह जाता है। रमपतिया के मन में उसके प्रति अथाह प्रेम है, उस प्रेम की धारा कहानी के अन्त में तेज़ गति से प्रवहित होती नज़र आती है। विदापत के मृदंग के ताल के रूप में पंचकौडी और मूल गायन के रूप में रमपतिया जोधन गुरु के आंगन में लहरें उठा रहे थे। चुमौना की बात उठाते ही पलायन करते वक्त ही

पंचकौडी तालमात्रा भूल गया था। फिर भी उसने कोशिश की..."लेकिन; वह मूलगैन नहीं हो सका कभी। मृदंगिया ही रहा सब दिन।" (पृ-131).जब उसने रमपतिया को साफ जवाब दिया था कि तुम झूठ फरेब करती हो, तब से उसकी उंगली टेढ़ी हो जाती है। कहने का मतलब यह है कि पंचकौडी ने जीवन और प्रेम का निषेध किया तब उसकी कला भी बेजान होती है। झूठ फरेब शब्द सुनते ही रमपतिया, जिसने तत्कालीन रोष में आकर पंचकौडी को शाप दिया था, के मूँह से -"चीख उठी थी रमपतिया- पाँचू!...चुप रहो!"(पृ-131) निकले ये शब्द उसके निरीह प्रेम को ही उजागर करता है। बाद में लौट आये पंचकौडी के बारे में बहुतकुछ सुनने को वह उतावला होती है। पंचकौडी ने मोहना केलिए मृदंग बजाया, यह सुनते ही रमपतिया परिवेश भूल जाती है। "ऐं, वह आया है? आया है वह?" पूछती रमपतिया मोहना के मूँह से .. "उसकी उँगली अब ठीक हो जाएगी सुनते ही बीमार मोहना को आह्लाद से अपनी छाती से सटा लिया।" (पृ-135). माँ-पुत्र के संवाद एवं प्रतिक्रिया के ज़रिए रेणु प्रेम के यादगार स्प को प्रस्तुत करते हैं।

"लेकिन तू तो हमेशा उसकी टोकरी भर शिकायत करती थी - बेईमान है, गुरुद रोही है, झूठा है!

है तोः वैसे लोगों की संगत ठीक नहीं। खबरदार,जो उसके साथ फिर कभी गया! दसदुआरी जाचकों से हेलमेल करके अपना ही नुक्सान होता है।...चल, उठा बोझ!

मोहना ने बोझ उठाते समय कहा, 'जो भी हो, गुनी आदमी के साथ रसपिरिया...।'

चौप! रसपिरिया का नाम मत ले।

अजीब है माँ! जब गुस्सायेगी तो बाघिन की तरह और जब खुश होती है तो गाय की तरह हुँकारती जायेगी और छाती से लगा लेगी। तुरंत खुश, तुरंत नाराज़।"(पृ1-35).

जब दूर से मृदंग से धातिंग की आवाज़ आयी तब "मोहना की माँ खेत के ऊबडखाबड मेड़ पर चल रही थी। ठोकर खाकर गिरते-गिरते बची। घास का बोझ गिरकर खुल गया।"(पृ-135). रमपतिया का मन पूरी तरह पंचकौडी का पीछा करता था। घास के बोझ का खुल जाना खुद रमपतिया के मन की गांठ का खुल जाना ही है। खुले मनवाली रमपतिया का चित्र कथाकार यों देते हैं "मोहना की माँ खेत की मेड पर बैठ गयी। जठ की शाम से पहले जो पुरवैया चलती है, धीर-धीरे तेज हो गयी।... मिट्टी की सौंधी सुगन्ध हवा में धीरे-धीरे घुलने लगी।"(पृ-136). इसके बाद भी उसका मन पंचकौडी की बातें सुनने को उतावला होता रहता है। वह पंचकौडी के शब्दों को दुहराती है कि "कहता था, तुम्हारा जैसा गुणवान बेटा? आगे मृदंगिया और कुछ बोलता था, बेटा?"(पृ-136). इसतरह रमपतिया पंचकौडी के वियोग प्रेम का अद्भुत चित्र रेणु प्रस्तुत करते हैं।

अपने गाँव, गाँव की धरती, वहाँ के लोकराग, पर्व-त्योहार, जाति का बखेडा, जीवन रीति, भाष-शैली के जरिए रेणु कलाकार और कला के प्रति उसकी प्रतिबद्धता, जीवन और प्रेम से कला का अटूट संबन्ध तथा जाति-वर्ण एवं काल के बन्धनों को पार करते प्रेम और उसकी खैरियत को अनोखे ढंग से प्रस्तुत किया है। औपनिवेशिक आधुनिकता के समय रेणु ने पूर्णतया देशी रंग में अपने उद्देश्य को प्रस्तुत किया है, जो आज भी कालजयी ज़रूर है।

संदर्भ

रसप्रिया- 'ठुमरी' संकलन, राजकमल प्रकाशन।

◆ प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
कोच्चिन विश्वविध्यलय।

'ठेस' शीर्षक की सार्थकता

♦ डॉ.एस.लीलाकुमारी

फणीश्वरनाथ रेणु आँचलिक कथाकार के रूप में विख्यात हैं। 'ठेस' ग्रामीण परिवेश से संबंधित एक कहानी है। इस कहानी के केन्द्र में सिरचन राय नाम का एक कारीगर है जो शीतलपाटी और चिक बनाने में पारंगत है। सिरचन अपने काम के महत्व को भी जानता है और उस काम को उत्कृष्ट रूप में कैसे किया जाता है इसमें भी वह कुशल है। यही कारण है कि उसके काम की न केवल सरहाना होती है बल्कि उसे काम के लिए बुलाने की माँग भी बनी रहती है। सिरचन यह जानता है कि जिस घर में भी वह काम के लिए जाए वह घर उसके काम के महत्व को समझ लेता है और उसका पूरा सम्मान करता है। वह अपने काम के बदले में बड़ी रकम की आशा नहीं करता। लेकिन यह ज़रूर चाहता है कि उसका आदर-सत्कार अच्छे ढंग से हो। यदि किसी के घर में उसका आदर -सत्कार ठीक से नहीं होता, तो वह काम अधूरा छोड़कर भी चला जाता है। काफी मनाने के बावजूद भी वह उस घर में काम करने के लिए दुबारा नहीं जाता। सिरचन रेणु की नज़र में एक कारीगर नहीं, बल्कि कलाकार है। इसी नाते उसके लिए आत्मसम्मान एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसकी उपेक्षा वह सहन नहीं कर सकता। रेणुजी इस कहानी के माध्यम से भारत के गाँवों और ग्रामीण परिवारों की आन्तरिक व्यवस्था को प्रस्तुत कर यह बताना चाहते हैं कि किस तरह ग्रामीण परिवेश में हाथ से परिश्रम करनेवाले लोगों में भी वही आत्मसम्मान होता है, जो किसी कलाकार में हो सकता है। लेकिन भारत का ग्रामीण समाज वर्गों और जातियों में विभाजित है। यहाँ व्यक्ति का महत्व उसके काम से नहीं, बल्कि उसकी जाति और उसकी आर्थिक स्थिति से होता है। सिरचन एक मामूली कारीगर है जो झोंपड़ी में रहता है। जिन घरों में उसे काम के लिए बुलाया जाता है उनकी तुलना में उसकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति दोनों 'कमतर' है। ऐसे समाज में सिरचन जैसा कारीगर इस भावना को व्यक्त करता है कि व्यक्ति को उसके काम से पहचाना जाना चाहिए, न कि जाति और समृद्धि से। यही कारण है कि वह अपमान को बरदाश्त नहीं करता और कथावाचक के घर में चाची द्वारा अपमानित होने पर काम बीच में छोड़कर चला जाता है।

सिरचन यह जानता है कि वह चिक और शीतलपाटी बनाने में कुशल है। इसलिए उसकी इतनी माँग है। इसलिए वह सम्मानजनक व्यवहार की माँग करता है। लेकिन इस भावना को न समझ पाने के कारण लोग उसे अहंकारी समझते हैं। उसे मामूली कारीगर समझने के कारण ही उसे ऐसा खाना दिया जाता है जैसा आम तौर पर गरीब नौकर-चाकर को दिया जाता है। यही कारण है कि सिरचन यह माँग करता है कि उसे भी वही सब कुछ खाने को दिया जाए जो घर के लोग खाते हैं। लेकिन उनकी इस माँग पर उसे ताने देते हुए कहा जाता है कि "घर में भी पान और गमकौआ जर्दा खाते हो?"[1] यानि सिरचन को 'उसकी औकात' बता दी जाती है। ऐसे ही अपमान के कारण सिरचन के मन को ठेस लगती है और वह काम बीच में छोड़ देता है।

सिरचन में संबन्धों की और भावनाओं की कद नहीं है। जिस घर से उसे अपमानित होकर जाना पड़ता है उसी घर की लडकी मानू को वह शीतलपाटी और चिक बनाकर दे देता है। बदले में कुछ नहीं लेता। केवल इसलिए कि मानू के मन में वह अपने प्रति स्नेह का भाव देखता हे। इस प्रकार रेणुजी ने इस कहानी के माध्यम से गाँव के एक कारीगर के स्वाभिमान और संवेदनशीलता का बहुत ही प्रभावशाली चित्रण किया है। रेणु यह बताना चाहते हैं कि गरीब से गरीब आदमी को भी अपमानित किये जाने पर ठेस लगती है। लेकिन वही व्यक्ति मानवीय रिश्ते के लिए अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार हो जाता है। सिरचन का यह चरित्र ही इस कहानी का कथ्य है।

इस कहानी का केन्द्रीय पात्र सिरचन कथावाचक के घर से अपमानित होकर काम को अधूरा छोड़कर चला जाता है और मनाये जाने के बावजूद वापस नहीं लौटता। यह कथावाचक इस बात को समझ जाता है कि सिरचन के दिल को ठेस लगी है। लेकिन यहाँ सिर्फ घटना ही महत्वपूर्ण नहीं हैं। सिरचन तो उस काम को हमेशा के लिए छोड़ देता है जिस काम के कारण उसकी इतनी ख्याति है। वह कथावाचक को कहता है- "बबुआजी ! अब नहीं, कान पकड़ता हूँ, अब नहीं।...मोहर छापवाली धोती लेकर क्या करूँगा? कौन पहनेगा?...ससुरी खुद मरी, बेटे-बेटियों को ले गयी अपने साथ। बबुआजी, मेरी घरवाली जिन्दा रहती तो मैं ऐसी दुर्दशा भोगता? यह शीतलपाटी को छूकर कहता हूँ, अब यह काम नहीं करूँगा।"[2]

उसे इस निर्णय में एक गहरी वेदना छुपी है। कथावाचक के जिस घर में उसके काम की कद्र होती थी, वहाँ पर भी अपमानित होने के कारण वह यह समझ जाता है कि अब उसकी कला को और उसके काम के महत्व को समझनेवाला कोई नहीं। यही उसके दुःख का कारण भी है। मंझली भाभी, चाची और घर- परिवार के दूसरे लोग उसका अपमान इसलिए करते हैं कि वे ये नहीं जानते कि सिरचन शीतलपाटी और चिक बनाने में किस तरह की कलात्मक दक्षता दिखाता है और यही सिरचन के लिए दुःख लगता है। इस तरह सिरचन के दिल को ठेस लगना इस कहानी का केन्द्रीय भाव है। इस दृष्टि से 'ठेस' शीर्षक सार्थक है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1 ठेस - फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.15, 'ठुमरी' संकलन, राजकमल प्रकाशन।

2 वही , पृ. 21

♦पूर्व अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
एस.एन.कॉलेज, कोल्लम

सही उत्तर चुनें

1. 'रसप्रिया' किस संकलन की कहानी है?

अ) ठुमरी आ)आदिम रात्रि की महक

इ) अगिनखोर ई) एक श्रावणी दोपहरी की धूप

2. 'मिरदंगिया' किस कहानी का पात्र है?

अ) लाल पान की बेगम आ) ठेस

इ) रसप्रिया ई)नित्य लीला

3. 'ठुमरी' किस संकलन की कहानी है?

अ) ठुमरी आ) अगिनखोर

इ) आदिम रात्रिकी महक ई)कोई नहीं

4. रेणु की किस कहानी का फिल्मीकरण हुआ?

अ) तीन बंदियाँ आ) तीसरी कसम

इ)सिरपंचमी का सगुन ई)पंचलाइट

(शेष पृ.सं. 31)

क्रांतिकारी रचनाकार फणीश्वर नाथ रेणु

♦ डॉ. बिंदु वेलसर

मानवीय दृष्टि से संपन्न रचनाकार फनीश्वरनाथ रेणुजी का जन्म 4 अप्रैल 1921 में बिहार प्रान्त के पूर्णिया जिले के औराही हिंगना गाँव में हुआ। आपके परिवार धानुक जाति के अंतर्गत आते हैं। इस धानुक जाति की दो उपजातियाँ होती हैं- विश्वास और मंडल। विश्वास जाति के व्यक्ति अपेक्षाकृत संपन्न हुआ करते थे और मंडल गरीब। फिर भी उनके पिता शीलनाथ मंडल धानुक जाति के संपन्न किसान माने जाते थे। घर के लोग रेणु को प्यार से फणीश्वर या फुनेश्वर कहा करते थे। दादी उसे रिनुआ कहकर बुलाती थीं। इसकी वजह यह थी कि उनके जन्म के समय परिवार को पहली बार ऋण लेना पड़ा था। इसलिए रिनुआ कहकर बुलाता था और यह 'रिनुआ' नाम बाद में 'रेणु' हो गया। आपके पिता कट्टर आर्यसमाजी थे और कांग्रेस के ज़मीनी कार्यकर्ता और स्वतंत्रता सेनानी भी थे। स्कूल में दाखिला करते समय उनका नाम 'फणीश्वर नाथ मंडल' रख दिया गया। पिताजी केलिए हिंदी और बंगला के अनेक पत्र-पत्रिकायें आती थीं। फणीश्वर उन्हें आते ही पढ़ लेते थे। उस समय अंग्रेज अपने विरोध में छपने वाले हर पत्र-पत्रिकाओं को जब्त कर देते थे और लिखनेवालों पर जुल्म करते थे। ऐसी किताब थी 'भारत में अंग्रेज़ी राज' और चाँद पत्रिका के 'फाँसी' अंक। चाँद पत्रिका को 'फाँसी' अंक का प्रकाशन सन् 1938 में हुआ था। इस अंक में भगतसिंह समेत अनेक क्रांतिकारियों ने लेख लिखे थे। जहाँ भी यह अंक मिलता था उसे जला दिया जाता था। अँगरेज़ यह समझते थे कि उन्होंने सारी प्रतियाँ नष्ट नहीं कर पायी हैं कुछ प्रतियाँ अब भी बची हैं। इन प्रतियों की तलाश में गोरे सिपाही फणीश्वर नाथ रेणु के घर आ धमके। उन्हें खबर थी कि शीलनाथ मंडल के पास ये सारे अंक थे। पिताजी ने कहा था कि प्रतियाँ उनके पास हैं। लेकिन अब उसे पढ़ने के लिए उनके रिश्तेदार ले गए हैं। वे घर की तलाशी ले सकते हैं। रेणुजी जानते थे कि प्रतियाँ उनके पिता के सिरहाने में हैं। वे तुरंत ही अन्दर जाकर सारे अंक अपने स्कूल के बक्से में डालकर स्कूल जाने केलिए घर से निकले। उस समय आप सिमराहा के स्कूल में पढ़ रहे थ। जब दरोगा ने पूछा कि कहाँ जा रहा है तो रेणुजी ने उत्तर दिया "सिमराहा जा रहा हूँ, फारबिसगंज की गाड़ी पकड़ना है, स्कूल का टाइम हैं दारोगा ने जाने दिया।" इस छोटी-सी उम्र में ही उनकी चतुरता और समायोचित बुद्धि को देखकर उनके परिवारवाले दंग रह गए थे। आज़ादी के करीब 41 साल बाद 'चाँद' पत्रिका का यह 'फाँसी' अंक फिर से छापा। इस प्रकार निड़रता से सच्चाई के साथ उत्तर देने की हिम्मत उन्होंने बचपन से ही दिखायी थी।

बचपन से ही राजनीति के प्रति उनके दिल में विशेष रुचि थी। स्कूल में रेणु ने एक वानर सेना का

गठन किया था, जिसके संस्थापक इंदिरा गांधीजी थे। यह वानर सेना अपने ढंग से क्रन्तिकारियों की मदद करती थी। सन् 1930 में रेणुजी अररिया स्कूल में पढ़ते समय महात्मा गांधीजी को नमक सत्याग्रह के दौरान गिरफ्तार कर दिया गया। उस समय नेताओं ने हड़ताल की घोषणा की थी और इस दौरान बाज़ार, स्कूल सब बंद कर दिया गया था। हड़ताल के उत्साह में रेणुजी जी ने असिस्टेंट हेड मास्टर को भी स्कूल जाने से रोक दिया था। अगले दिन सभी छात्रों को आठ आने का जुर्माना भरना पड़ा और रेणुजी को सबके सामने 10 बेंतों की सजा भी मिली। खबर सुनकर स्कूल के बच्चे, कस्बे के लोग सब इकट्ठे हो गए। पहला बेंत पड़ा तो रेणुजी ने नारा लगाया "वन्दे मातरम"। दूसरा बेंत पड़ा तो रेणुजी ने नारा लगाया "महात्मा गांधीजी की जय"। तीसरा बेंत पड़ा तो रेणुजी ने फिर नारा लगाया "जवाहरलाल नेहरु जिंदाबाद"। हर नारे पर भीड़ भी उत्तर दे रही थी। नारे तेज़ होते गएऔर दस बेंत पूरे होने से पहले ही हेडमास्टर को अपना फरमान वापस लेना पड़ा। कस्बे के लोगों ने उन्हें कंधे पर उठाकर जुलूस निकाला। पुलिस ने अन्य छात्रों समेत उन्हें पकड़कर पूर्णिया जिले के जेल में डाल दिया। पुलिस के प्रश्नों का वानर सेना के सभी छात्रों ने एक ही उत्तर दिया- 'नाम- जवाहर लाल, पिता का नाम- मोतीलाल नेहरु , घर-आनंद भवन, इलाहाबाद'। रेणुजी की यह पहली जेल यात्रा थी। सजा काटकर आये तो स्कूल से निकाल दिया गया। इस प्रकार बचपन से ही राजनीति के प्रति उनका लगाव हम देख सकते हैं। इन घटनाओं में उनके क्रान्तिकारी मन की मिसाल देखा जाता है।

आगे की पढ़ाई केलिए रेणुजी ने सिमरबनी के स्कूल में दाखिला ले लिया। यह स्कूल पंडित रामदेनी तिवारी ने शुरू किया था। ये उनके पहले और आखरी गुरु हैं जिनका उनपर सारी उम्र तक असर बना रहा। रेणुजी के अभिनय और साहित्यिक जीवन की शुरुआत भी इस स्कूल से ही हुई। गरुजी नाटक लिखा और रेणुजी ने दूसरे बच्चों के साथ उसमें अभिनय भी किया। गुरूजी ने कविता के संस्कार भी डाला। स्कूल के अध्यापक गणेशप्रसाद विश्वास के सम्पादकत्व में निकली हस्तलिखित मासिक पत्रिका 'खंगार सेवक' में आपकी प्रारंभिक रचना का श्रीगणेश हुआ। रेणुजी पूरी पत्रिका को अपने हाथों से लिखते थे और चित्र भी खुद बनाते थे। जब वे नवीं कक्षा में पढ़ रहे थे तब उन्होंने तिवारीजी का स्कूल छोड़ दिया और अकादमी में भरती हो गए इन्हीं दिनों उन्होंने अपनी पहली कहानी 'परीक्षा' लिखी। आगे की पढ़ाई केलिए वे नेपाल के विराट नगर के आदर्श विद्यालय में सन् 1937 में आ गए। यह स्कूल नेपाल के गाँधी कृष्णप्रसाद कोईराला चलाते थे। कोइराला परिवार से उनका पारिवारिक सम्बन्ध था। इसलिए कोईराला परिवार में रहकर उन्होंने आगे की पढ़ाई की। पढ़ाई के साथ-साथ रेणुजी राजनीति में भी सक्रीय रूप से भाग लेते थे।

सन् 1939 में रेणुजी ने काशी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में इंटरमीडिएट केलिए प्रवेश लिया। सन् 1941 में इंटरमीडिएट की परीक्षा पास कर ली और बी.ए में नामांकन करवाया। यहाँ पढ़ाई से अधिक राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा लेते रहे। वे स्टुडेंट्स

फेडरेशन के सचिव भी थे। धीरे-धीरे वे वामपंथी दलों में सक्रिय हो गए। इस दौरान आपने 'अवाम' नाम से एक लम्बी कविता लिखी। कविता इतनी मशहूर हो गयी कि विश्वविद्यालय के हर छात्र इसे गुनगुनाते थे। सोशलिस्ट पार्टी और फॉरवर्ड ब्लॉक के भी वे सदस्य बन गए। स्नातक अध्ययन आधा छोड़कर वे राजनीति के क्षेत्र में उतरे और अपने गाँव में किसानों का सम्मेलन करवाया। "फणीश्वर नाथ रेणु राजनीति में, खास तौर से सक्रिय राजनीति में हमेशा से ही बने नहीं रहे, लेकिन उनकी रचनाओं में राजनीति की अहम भूमिका है। उनकी साहित्यिक चेतना सामाजिक और राजनैतिक विचारधारा का समन्वय प्रतीत होती है। जिन तत्वों ने उनकी राजनीतिक अंतर्दृष्टि को विकसित किया, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य-सृजन का कारन बना।" चार-पाँच सालों में वे पार्टी की गतिविधियों से ऊब गए। इस दौरान सन् 1945 में लिखी गयी उनकी कहानी 'पार्टी का भूत' में उस समय के उनके अनुभव की अभिव्यक्ति की गयी है।

सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भी आपने सक्रिय रूप से भाग लिया था और 'आज़ाद दस्ता' नाम से एक क्रन्तिकारी जत्था भी बनाया। इस दस्ते ने पुलिस को तंग कर दिया था और पुलिस रेणुजी के पीछे पड़ गयी। रेणुजी नववधु का भेस धारण करके पुलिस से बच निकला। लेकिन अपने गाँव में पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर दिया। जेल में अंग्रेज़ पुलिस ने उन्हें कठोर यातनाएं दीं। लेकिन उन्होंने अपना मुंह न खोला। उन्हें ढाई साल के लिए जेल में कैदी बनकर रहने की सजा मिली। वहाँ वे खतरनाक रूप से बीमार पड़ गए और लतिका चौधरी नाम की नर्स ने उसकी सेवा-शुश्रुषा करके उन्हें जिंदगी में वापस ले लिया और रेणुजी को उनसे प्यार हो गया। अंत में लतिकाजी उनकी पत्नी बन गयी। सन् 1944 में वे जेल से छूटे और सक्रिय लेखन के क्षेत्र में आ गये। उन्होंने वापस आकर 'जै गंगा' और 'डायन कोसी' जैसे रिपोर्ताज लिखकर इस विधा को संपन्न कर दिया। आज भी वे इस विधा के अनमोल धरोहर हैं। इस समय प्रकाशित साप्ताहिक 'विश्वामित्र' में उनकी कहानियाँ भी जमकर प्रकाशित हो रही थीं। सन् 1944 में बटबाबा, पहलवान की ढोलक, सन् 1945 में कलाकार, प्राणों में खुले रंग, न मिटने वाली भूख, रखवाला, पार्टी का भूत, सन् 1946 में रसूल मिस्तरी, बीमारों की दुनिया, सन् 1947 में इतिहास, मज़हब और आदमी आदि कहानियाँ प्रकाशित हुईं।

सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन की लहर फ़ैल गयी। रेणुजी भी इससे अछूता न रह सके। सन् 1947 में भारत आज़ाद हुआ। आज़ादी के बाद रेणुजी को मोहभंग हुआ, उन्हें आज़ादी झूठी लगी। उन्होंने लिखा - "सुराज हुआ है ज़रूर, लेकिन वह हमारे लिए नहीं हुआ है। वह सुराज हुआ हैं बिरलावों केलिए,टाटाओं केलिए यह जनता का सुराज नहीं महाभारत छिड़ा हुआ है। दरिद्रता, भूख और रोगों से मरनेवाले एक-एक प्राणी को आज हम 'शहीद' कहते हैं। क्योंकि दुश्मनों के इन शस्त्रों से जूझनेवाले, मरनेवाले वीरों को हम वर्ग-संघर्ष में लड़नेवाले सिपाही समझते हैं। इस भ्रष्टाचार के आलम में घुल-घुल कर मरने से अच्छा है, एक ही बार कुछ करना या करते-करते मर जाना।"[2]

वास्तव में रेणुजी की प्रतिबद्धता राजनीतिक दल के साथ नहीं, मानव के साथ थी। इसलिए बाद में उन्होंने राजनीति से अपना नाता तोड़ लिया। "मैंने राजनीति को तिलांजलि दी, लेकिन जिन मूल्यों के लिए मैं पार्टी में आया था, वे मूल्य मेरे साथ रहे।"[3] मानव के प्रति उनकी इस प्रतिबद्धता ने उन्हें लेखक बनाया और लेखन में वे सदैव इस बात के समर्थक रहे एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था- "मैं 'हाल टाइम' साहित्य करने के पहले राजनीति करता था, यानी पार्टी में था- किसान, मजदूरों के बीच। किसानों की कई बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं। मज़दूर आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेता रहा। राजनीतिक पार्टी का सदस्य न होकर भी आदमी राजनीति कर सकता है, यह बात लोगों के दिमाग में अडेगी भी नहीं। मेरी रचनायें, खासकर 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'दीर्घतपा', 'जुलूस', तथा 'कितने चौराहे' सभी राजनीतिक समस्याओं, विचारों के ही प्रतिफल हैं।" 'कितने चौराहे' में अभिव्यक्त अधिकांश घटनाएँ उनके निजी जीवन से सम्बद्ध हैं।

बिहार आन्दोलन में भी रेणुजी ने सक्रिय भाग लिया था। सन् 1947 के मार्च में जयप्रकाश नारायण जी के नेतृत्व में बिहार आन्दोलन का विस्फोट हुआ। कर्फ्यू लगायी गयी थी। उस दिन एक हज़ार लोगों ने मुंह में केसरिया पट्टी बाँधकर मौन जुलूस निकाला था। इस जुलूस में रेणुजी ने भी भाग लिया था।

सन् 1950 में नेपाली जनता को राणाशाही के दमन और अत्याचारों से मुक्ति दिलाने केलिए वहाँ की सशस्त्र क्रांति में जीवंत योगदान दिया, जिसके परिणामस्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। इस पर आधारित कई रोपोर्ताज भी रेणुजी ने लिखी। रेणुजी की प्रारंभिक शिक्षा नेपाल के कोइराला परिवार में रहकर हई थी। नेपाल में राणा वंश के विरोध में कोइराला बंधुओं के नेतृत्व में 'नेपाली कांग्रेस' की स्थापना हुई थी। 'नेपाली क्रांति' में रेणुजी ने विश्वेश्वरप्रसाद कोयराला को पूरा सहयोग दिया। इसे आधार बनाकर 'नेपाली क्रांति कथा' नामक एक रिपोर्ताज भी उन्होंने लिखी थी। नेपाल क्रांति के बाद रेणुजी भारत लौट आये। सोशलिस्ट पार्टी से जुट गये। पार्टी से सम्बंधित सभी क्रिया-कार्यों में उसके प्रचार-प्रसार में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। लेकिन प्रथम चुनाव में अपेक्षाकृत सफलता न मिलने पर कार्यकर्ताओं के बीच बिखराव आ गया। रेणुजी धीरे-धीरे साहित्य की ओर मुड़ गए। उनके मन में "जब कोई आदमी राजनीति और साहित्य दोनों क्षेत्रों में सामान रूप से काम कर सकता हो और अचानक उसे फैसला करना पड़ जाए कि दोनों में से वह किसे चुने तो साहित्य को चुननेवाला व्यक्ति बुद्धिमान होता हैं, मैं ने कहा बद्धिमान ही होना चाहिए, और मैं ने राजनीति को तिलांजलि दे दी। राजनीति को तिलांजलि दे दी, लेकिन जिन मूल्यों के लिए मैं उन पार्टियों में आया था वे मूल्य मेरे साथ रहे..... उन मूल्यों को लेकर मैंने लिखना शुरू किया।"[4]

सन् 1972 के विधानसभा चुनाव में लड़ने का निर्णय लिया। इस निर्णय के बारे में वे कहते हैं- "तो मैं चुनाव लड़ रहा हूँ -अपने क्षेत्र के साधारण जन के सुख-दुःख में सक्रिय हाथ बढ़ाने केलिए। अपने लोगों की समस्याओं को मुक्तकंठ से प्रस्तुत करने केलिए। अपने क्षेत्र के विषाक्त किए गए सामजिक-सांस्कृतिक

जीवन को फिर से निरामय विशुद्ध करने केलिए और अपने क्षेत्र की नई पीढ़ी, नए पौधे, नयी फसल की निगरानी करने केलिए।" चुनाव में प्रचार करने का तरीका भी अलग था। "वे चुनावी सभाओं में किस्से-कहानियाँ भी सुनाते थे, भजन व गीत भी। लेकिन चुनाव में वे परास्त हुए। अपने चुनावी अनुभवों के बारे में आपने 'कागज़ की नाव' नामक पुस्तक लिखी। रेणुजी कहा करते थे कि अगर वे चुनाव जीत गए तो कहानियाँ लिखते रहेंगे। पर हार गए तो उपन्यास लिखेंगे। वे चुनाव में तो हार गए, लेकिन वादानुसार उपन्यास लिखने का समय उनके पास नहीं था। सन् 1954 में आपका पहला उपन्यास 'मैला आँचल' प्रकाशित हुआ रेणुजी की अंतिम कहानी 'भित्तिचित्र की मयूरी' सन् 1977 में प्रकाशित हुई।

उपन्यासकार के रूप में रेणुजी का जितना महत्व हिंदी साहित्य में है उतना या उससे ज़्यादा महत्व कहानीकार के रूप में आपको है। प्रेमचंद जी के बाद हिंदी कहानियों में ग्रामीण पृष्ठभूमि में कहानी लिखनेवाले कहानीकार अधिक नहीं हुए हैं। सभी ने मध्यवर्गीय नगरी परिवारों की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित कर दिया। रेणु जी ने तो ग्रामीण छवि को अपनी रचना में स्थान दिया। स्वाधीनता के बाद जो युवा पीढ़ी साहित्यक्षेत्र में आये, उन्होंने साहित्य को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। सभी कहानी आन्दोलन मध्यवर्गीय परिवारों की समस्याओं को ही आगे रख दिया था। प्रेमचंद के बाद फनीश्वरनाथ रेणु ने भारतीय गाँव को अपनी समग्रता के साथ पाठकों के सामने उपस्थित कर दिया। लेकिन हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि उनकी कहानियाँ प्रेमचंद की कहानियों से भिन्न हैं, वैसे ही अपने समकालीन कहानीकारों की कहानियों से भी भिन्न हैं। वे एक नवीन भावबोध को लेकर हिंदी कथा साहित्य में आये। इस बारे में आलोचक डॉ शिवकुमार मिश्र यों लिखते हैं- "रेणु हिंदी के उन कथाकारों में हैं, जिन्होंने आधुनिकतावादी फैशन की परवाह न करते हुए, कथा-साहित्य को एक लम्बे अरसे के बाद प्रेमचंद की उस परंपरा से फिर जोड़ा, जो बीच में मध्यवर्गीय नागरिक जीवन की केन्द्रीयता के कारण भारत की आत्मा से कट गयी थी।"[5]

हम निस्संदेह कह सकते हैं कि रेणुजी की आत्मा गाँव में बसती है। उन्होंने गाँव का कोना-कोना झांककर वहां के ग्रामीण जीवन को, परिवेश को, पात्रों को पूरी सच्चाई के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। "रेणु की छाती में हर वक्त गाँव धड़कता था और उसकी धड़कन को उन्होंने अपनी रचनाओं में, कागज़ों पर उतार दिया हैं"।[6]

संदर्भ

1.रेणु के साथ-भूमिका-पृ 11

2.रेणु से भेंट, सं.- भारत यायावर -पृ 83

3.श्रुतअश्रुत पूर्व फणीश्वर नाथ रेणु -पृ 137

4.रेणु से भेंट, सं.- भारत यायावर -पृ 58

5.भूमिका, फनीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ

6.डॉ. सुवास कुमार-आंचलिकता, यथार्थवाद और फनीश्वरनाथ रेणु- पृ 27

◆ एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
सरकारी माहिला महाविद्यालय
तिरुवनंतपुरम

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला-आँचल' - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

♦ डॉ.पी.के.प्रतिभा

श्री फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाकार हैं। वे निर्विवाद रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति के बादवाले दशक के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने युग की तीव्रगति से हो रहे मूल्य-संक्रमण को उसकी संपूर्ण जटिलता में कलात्मक अभिव्यक्ति दी है। इसकेलिए उन्होंने आँचलिक कथा साहित्य को चुन लिया। उनका आँचलिक कथा साहित्य आँचलिक अस्मिताओं और परंपराओं की रक्षा करने, उनको जीवंत रखने में सहायक रहा। रेणुजी ने गाँव को केंद्र में रखकर साहित्य की साधना की। सन् 1954 में उनका प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' प्रकाशित हुआ, जो एक आँचलिक उपन्यास है।

ग्रामीण जीवन पर स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले ही बहुत कुछ लिखा गया। लेकिन ग्राम्य चेतना को आँचलिक शब्द से पिरोने का काम रेणुजी ही कर सके। 'अंचल' शब्द से अभिप्राय है 'किसी देश या प्रदेश का विशिष्ट भूभाग'।अंचल विशेष को आधार बनाकर लिखे गये उपन्यास को 'आँचलिक उपन्यास' कहा जाता है। राजेन्द्र अवस्थी के शब्दों में - "जिस कथाकृति में किसी विशेष जनपद या क्षेत्र के जन-जीवन का समग्र चित्रण- वहाँ की भाषा, वेश-भूषा, धर्म, जीवन, समाज, सस्कृति और आर्थिक तथा राजनैतिक जागरण के प्रश्न एक साथ उभरकर आएँ, वह आँचलिक कृति होगी"।[1] 'मैला आँचल' का कथ्य काल की दृष्टि से देश को आज़ादी मिलने के वर्ष के एक दो वर्ष के पूर्व से लेकर उसके दो-एक वर्ष के बाद तक और स्थान की दृष्टि से भारत की राजधानी से दूर, देश के सर्वाधिक पिछड़े राज्य बिहार के सर्वाधिक पिछड़े जिले पूर्णिया के उत्तर में मेरीगंज नामक एक गाँव से जुड़ा है। 'मैला आँचल' उपन्यास की भूमिका में ही में रेणुजी लिखते हैं - "यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया पूर्णिया, बिहार राज्य का एक जिला है इसके एक ओर नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तन और पश्चिमी बंगाल। विभिन्न सीमा रेखा से उसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा रेखाएँ खींच देते हैं। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है।"[2] इस सुदूर और अत्यन्त पिछड़े हुए अंचल को उसकी संपूर्णता में प्रस्तुत करने केलिए रेणुजी ने एक ऐसे कथाशिल्प और भाषा का इस्तेमाल किया है जो इसके पूर्व हिंदी उपन्यास केलिए अपरिचित थी। इसमें उन्होंने स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के भारत के पिछड़े हुए गाँवों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन के यथार्थ को गहराई से चित्रित किया है। उपन्यास में चित्रित ग्रामांचल की और एक पहचान है उसकी अन्धविश्वासग्रस्तता, जो अशिक्षा और मानसिक पिछड़ेपन की उपज है। भारत के गाँवों की सामाजिक-आर्थिक बदहाली, देशी-विदेशी ज़मींदारों के अत्याचार, बहुसंख्यक

जन-समाज का भूमिहीन होना, उनका शोषण और अमानवीय उत्पीड़न, उनके सामाजिक जीवन से जुड़ी नैतिकता-अनैतिकता सम्बन्धी विचारों के यथार्थ जीवन्त चित्र इस उपन्यास में सर्वत्र मिलते हैं। रेणु के अपने शब्दों में "इसमें फूल भी है, शूल भी धूल भी है, गुलाब भी कीचड़ भी है, चंदन भी सुन्दरता भी है, कुरूपता भी- मैं किसीसे दामन बचाकर निकल नहीं पाया।"[3]

ग्रामीण अंचलों की निर्धनता का कारण सदियों से विदेशी और भारतीय सामन्तों द्वारा आम आदमी का शोषण है। इस गरीबी और शोषण का चित्रण रेणुजी ने नितान्त यथार्थवादी तरीके से किया है। गरीब लोगों को भरपेट भोजन और तन ढँकने को कपड़ा नहीं मिलता और आवास के नाम पर फूस की झोंपड़ी में उनकी सारी ज़िन्दगी कट जाती है। गरीबी इतनी ज़्यादा है कि कोई रोगग्रस्त हो जाने पर वे साधारण दवा के पैसे तक नहीं जुटा पाते। अनेक ग्रामीण काला अज़ार,मलेरिया, गठिया आदि रोगों से ग्रस्त हैं। बच्चे रोग के निदान के बिना आनन कानन में मर जाते हैं और इसका दोष किसी डायन के मत्थे मढ़ दिया जाता है। मज़दूरों को मज़दूरी नहीं। लोग अपना पेट भरने की चिन्ता से ग्रस्त हुए। "कपड़े के बिना सारे गाँव के लोग अर्धनग्न हैं। मर्दों ने पैंट पहनना शुरू कर दिया है और औरतें आँगन के काम करते समय एक कपड़ा कमर में लपेटकर काम चला लेती हैं। बारह वर्ष तक के बच्चे नंगे ही रहते हैं।"[4] इस उपन्यास में ज़मींदार, सरदार, अमीर, उमराव लोग किस तरह गरीब, मज़दूर और संथाल आदिवासियों पर अन्याय, अत्याचार करते हैं, इसका चित्रण हुआ है। यह शोषण अनेक रूपों में होता है। इस शोषण में राजनीतिक दलों की भूमिका को भी रेणु ने प्रभावोत्पादक ढंग से उभारने का प्रयास किया है। इसमें गाँवों के बनते-बिगड़ते जीवन की छवि को अत्यन्त कौशल के साथ प्रस्तुत किया गया है। रेणु की क्षेत्र-सीमा संकीर्ण होने पर भी दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। "उन्होंने अपने छोटे-से चित्र फलक पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म, विविध रंगमयी तथा विवर्ण अनेक रूपात्मक रेखाओं की विविधता का ऐसा अनोखा आलेखन किया है कि संपूर्ण ग्राम्य जीवन के भीतर युग की और संकीर्ण क्षेत्र के भीतर जीवन-वैविध्य की वे बड़ी मनोरम झाँकी प्रस्तुत कर सके।"[5]

भारत को आज़ादी मिलने के समय ग्रामीण अंचलों का यही सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक यथार्थ था, जिसके कारण रेणुजी ने पूरी प्रामाणिकता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण और गहरी सहानुभूति का परिचय दिया था। असल में उन्होंने हिंदी के महान साहित्यकार प्रेमचन्द के समाजवादी यथार्थ को अपने उपन्यासों के द्वारा पुनः प्रतिष्ठित किया। किसानों की आर्थिक-सामाजिक दशा के साथ उनमें आती राजनीतिक चेतना का भी रेणुजी ने पर्याप्त विस्तार और समझ के साथ चित्रण किया है। उन्होंने समकालीन राजनितिक दलों के नैतिक एवं सैद्धान्तिक खोखलेपन का बड़ी निस्संगता और ईमानदारी के साथ अंकन किया। 'मेरीगंज' समकालीन राजनीति का लघु रूप बन गया है।तत्कालीन आम आदमी की सरलता, अबोधता और पुराने मूल्यों के प्रति आस्था का लाभ उठाकर चालाक राजनीतिक व्यवसायी उसे आसानी से ठग लेते हैं। 'मैला आँचल' का विश्वनाथ प्रसाद इन राजनीतिक व्यवसायियों का प्रतीक है। देश के आज़ाद होने पर राजनीति का विकृत चेहरा और भी अधिक भयानक हो जाता है। कांग्रेस का चरित्र दिनोंदिन जनविरोधी और सामंती-पूँजीवादी होता चला जाता है। सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट पार्टियाँ भी अपने घोषित उद्देश्यों को

भूलकर राजनीति के खेल खेलने में अधिक रुचि लेने लगती हैं। गाँव के गरीब और बेज़मीन लोग बैल की ज़िन्दगी जीते हैं। दिन भर बैलों की तरह काम करने पर भी मुँह में दाना नहीं जाता। इसलिए डॉ.प्रशान्त सोचता है कि मलेरिया का इलाज ढूँढ़ने से पहले इन लोगों को इंसान बनाना आवश्यक है।

रेणुजी ने इस उपन्यास में जातिगत रूढ़ियों के एक बीभत्स चेहरे को दिखाया है। डॉ.प्रशांत जब नये - नये गाँव में आते हैं तो गाँव के लोग उनकी जाति जानने को आतुर हो जाते हैं। डॉक्टर को खुद अपनी जाति नहीं मालूम थी। क्योंकि वे अज्ञात कुल के थे। उन्होंने कभी भी जाति को महत्व नहीं दिया। गाँव में भिन्न-भिन्न जातियों के लोगों के रहने के स्थान अलग-अलग थे और उनका अपना एक नेता होता था।

रेणुजी की दृष्टि ग्रामीणों की दैन्य भरी ज़िन्दगी के साथ-साथ गाँवों की समस्त बुराइयों और कमियों पर भी है। वे गाँव के प्राकृत सौंदर्य और परंपरागत सांस्कृतिक समृद्धि की भी उपेक्षा नही करते। ग्रामीण जीवन का एक यथार्थ है कि ग्रामीणों के सारे संस्कार, उनके काम का एक-एक क्षण, पर्व, त्योहार, रीति-रिवाज़, गीत-नृत्य से जुड़े हुए हैं। लोकगीतों के द्वारा भी लेखक को आँचलिक परिवेश, जन-जीवन और उनकी मनः स्थितियों को उभारने में अधिक सफलता मिली है। 'मैला आँचल' में लोकगीतों की छटा उमड़ पड़ी है। ग्रामीण यथार्थ के इस पक्ष को रेणुजी ने पहली बार उद्घाटित किया है।

उपन्यास का प्रारंभ 'मेरीगंज' गाँव में मलेरिया सेंटर खुलवाने के प्रसंग से होता है। समग्र गाँव में तीन प्रधान टोलियाँ हैं - कायस्थ ,राजपूत और यादव। इनमें क्रमशः विश्वनाथ प्रसाद, ठाकुर रामकिरपाल और खेलावत यादव प्रमुख हैं। मेरीगंज में सभी वर्णों के लोग रहते हैं, जिनमें अनपढ़, गँवार और सभ्य लोग भी हैं। डॉ.प्रशांत, जो कि अपनी पढ़ाई पूरी करके इन्सानों को मलेरिया और काला अज़ार जैसे रोगों से बचाने केलिए मेरीगंज आते हैं।सरकार उन्हें छात्रवृत्ति देकर विदेश भेजना चाहती थी। किंतु देशप्रेम से ओतप्रोत डॉ .प्रशांत अपने देश के पिछड़े ग्राम मेरीगंज के चुनते हैं। इस गाँव के लोग जानवर की तरह ज़िन्दगी जीते हैं। लोगों की दशा देखकर डॉ.प्रशांत तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद से कहते हैं-"जिस दिन धनी, ज़मींदार , सेठ और मिलवालों को लोग राह चलते कोढ़ी और पागल समझ लेंगे उसी दिन असली सुराज हो जाएगा।"[6] तहसीलदार की पुत्री कमला अविवाहित और दिल की मरीज़ है। डॉ.प्रशांत उसकी चिकित्सा करते -करते प्रेमजाल में फँस जाते हैं। डॉ.प्रशांत को संथालों से सहानुभूति थी। बाद में कम्युनिस्ट होने के आरोप में उन्हें गिरफ्तार कर दिया जाता है। डॉ.प्रशांत के कारावास के दौरान कमला उनके बच्चे की बिना व्याही माँ बनती है और डॉ.प्रशांत जेल से रिहा होने पर उसे अपनाते हैं।

मेरीगंज का आर्थिक परिवेश विषमताग्रस्त है। वहाँ की अधिकांश भूमि तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद, रामकिरपाल सिंह और खेलावत यादव के पास है। गाँव के सभी गरीब किसी-न-किसी बाबू के कर्जदार हैं। गाँव के किसान, मज़दूर और संथाल की हालत बदत्तर हैं। कालीचरण लोगों को ज़मींदारों के शोषण के सम्बन्ध में सचेत करता है। आज़ादी के बाद की राजनीति का यथार्थ चित्रण मेरीगंज में है। समग्र दलों के लोग इस गाँव में दिखाई देते हैं। बलदेव कांग्रेस दल का ,कालीचरण

सोशलिस्ट पार्टी का, वासुदेव कम्युनिस्ट दल का व हरगौरी राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल का प्रतिनीधि है। उपन्यास में एक मठ है, जो गाँव की धार्मिकता का प्रतीक है। रामदास मठ के महंत सेवादास का शिष्य है , जो उनके स्वर्ग सिधारने पर गुरुपथ पर आरूढ होता है। मठ की दासी का काम करनेवाली कोठारिन लक्ष्मी है, जो सेवादास की सेवा करती है। सेवादास मठ और दासी पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। लक्ष्मी बालदेव को कंठी लेकर, मठ का महंत बनाने का प्रयास करती है। बालदेव भी लक्ष्मी के प्रति आकर्षित होता है।

उपन्यास में किसान, संथाल और मज़दूरों का ज़मींदारों से संघर्ष होता है। डॉ.प्रशांत तहसीलदार के अन्याय के विरोध में कम्युनिस्ट दल का साथ देकर संथाल को भटका देते हैं। इसलिए उन्हें जेल जाना पड़ता है। जेल से छूटकर गाँव की उन्नति करने में लगे रहते हैं। उपन्यास का अन्त बड़े नाटकीय ढंग से हुआ है। तहसीलदार द्वारा गरीब किसानों की हड़पी हुई भूमि वापस करना उसके हृदय परिवर्तन के रूप में उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। लेकिन यह हृदय-परिवर्तन बड़ा अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है।

'मैला आँचल' उपन्यास में लगभग दो सौ पचहत्तर पात्र हैं। इनमें 165 पात्र तो मेरीगंज गाँव के ही हैं। शेष पात्र मेरीगंज के बाहर के हैं जो मेरीगंज की ज़िन्दगी को अपने आसपास अथवा पूरे देश की ज़िन्दगी से जोड़ते हैं। इसमें एक भी ऐसा पात्र नहीं, जिसे केंद्रीय कहा जा सके, नायक कहा जाने लायक पात्र तो इसमें कोई है ही नहीं। लगभग आधा दर्जन पात्र, डॉ.प्रशांत, विश्वनाथ प्रसाद, कालीचरण,बालदेव,कमला, लक्ष्मी आदि किंचित प्रमुखता प्राप्त करते हैं, पर वे सब मिलकर भी 'मैला आँचल' की पूरी कहानी का प्रतिनिधित्व नहीं करते। वस्तुतः रेणु ने अपने कथ्य के अनुरूप ही अपना संसार निर्मित किया है। चूँकि मेरीगंज इस संसार के केन्द्र में है अतः इसके आधे से अधिक पात्र या तो मेरीगंज के निवासी हैं या मेरीगंज उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र है। मेरीगंज जातियों के आधार पर अनेक टोलों में बाँटा हुआ है। इनमें से कुछ टोले पिछड़ी जातियों के हैं, जिनके लोग निहायत गरीब, अशिक्षित,अन्धविशावासीऔर बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। मेरीगंज के विभिन्न जातियोंवाले टोलों के विशिष्ट सामूहिक चरित्र-निर्माण में रेणुजी ने अद्‌भुत अवलोकन-क्षमता और सर्जनशीलता का परिचय दिया है।

तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद 'मैला आँचल' के प्रमुख पात्रों में से एक है। वह कायस्थ टोली के मुखिया है। वह तत्कालीन शोषण पर आधारित व्यवस्था का प्रतीक पात्र है। सारा मेरीगंज इस कारण निर्धन, अशिक्षित, बीमार तथा पिछड़ा हुआ है कि तहसीलदार ने अपनी दुष्टबुद्धि, चालाकी और बेईमानी से मेरीगंज की एक हज़ार बीघे ज़मीन पर अकेले कब्जा कर रखा है। उसकी तहसीलदारी तीन पुश्तों की है, और वह भी अपनी सारी ज़िन्दगी किसानों को लूटने में ही लगा देता है। अपने इस रूप में वह एक शैतान जैसा प्रतीत होता है। उपन्यास के आरंभ से ही गाँव की इज़्जत बचाने का मुखौटा लगाए शोषक के रूप में उपस्थित होते हैं। उपन्यास के अन्त में उपन्यासकार ने तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद का हृदय-परिवर्तन दिखाया है। वह अपनी सौ बीघा ज़मीन किसानों में वितरित कर उनकी वाहवाही लूटने में समर्थ होता है। पर उपन्यासकार ने इसे विश्वनाथप्रसाद जी की चालाकी के रूप में न देखकर

उसके हृदय-परिवर्तन के रूप में प्रस्तुत किया है।यह रेणु के आशावादी होने का परिचय देता है। लेकिन यह उतना विश्वसनीय नहीं लगता।

दूसरा पात्र डॉ.प्रशांत भी उपन्यास का केंद्रीय पात्र न होने के बावजूद, मेरीगंज को उसकी संपूर्णता में देखने केलिए एक अपरिहार्य अवलोकन बिन्दु प्रदान करते हैं। उनकी संवेदना के द्वारा ही मेरीगंज के बहुवर्णीय जीवन को, उसके आँसू और हँसी को, शोषण और संघर्ष को सम्यक देख पाने में समर्थ होता है। डॉ.प्रशान्त कथाकार के सपनों और आदर्श के प्रतीक हैं। वे एक ईमानदार और संवेदनशील मनुष्य थे। मेरीगंज अंचल के लोगों की दुर्दशा देखकर वे त्रस्त हो उठते थे। शोषित गरीब लोगों के प्रति उनके मन में हमदर्दी है। वे मानते हैं कि गरीबी और जहालत, इस रोग के कीटाणु हैं। वे नये संसार केलिए इन्सान को स्वच्छ और सुन्दर बनाना चाहते थे। मेरीगंज की धरती और वहाँ के निवासियों के सम्बन्ध में रेणुजी के निरीक्षण, अनुभव और दृष्टिकोण पाठकों को डॉ.प्रशान्त के माध्यम से ही प्राप्त हाते हैं। उपन्यासकार के आशावाद और भविष्य के सपनों का आलम्बन भी डॉ.प्रशान्त ही है। डॉ.प्रशान्त रेणुजी की पूरी संवेदना के वाहक हैं।

'मैला आँचल' के पात्रों में बावनदास का चरित्र सर्वाधिक विशिष्ट है। उसके व्यक्तित्व में शारीरिक विकलांगता के साथ आत्मिक और नैतिक उदात्तता का ऐसा संगम है कि वह हमारी चेतना में चुभ-सा जाता है। यह बौना और कुरूप आदमी अपने त्याग, तपस्या, देश के प्रति निष्ठा और श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों में आस्था के कारण इतना महान बन जाता है कि उसका 'वामन' नाम सार्थक हो जाता है। बावनदास कांग्रेसी राजनीति में बढ़ रहे जातिवाद,धन के प्रभाव आदि से अत्यन्त दुखी है। इस पतन को देखकर वह विक्षिप्त प्राय हो जाता है और उसे अपना जीना भी निरर्थक जान पड़ने लगता है। वह कांग्रेस पार्टी में बढ़ रहे नैतिक मूल्यों के खिलाफ लड़ते हुए अपने जीवन को ही दाँव पर लगा देने का निश्चय करता है। उसकी मौत भारतीय राजनीति में नैतिक मूल्यों की मौत है।

'मैला आँचल ' के एक और राजनीतिक पात्र 'बालदेव' का चरित्र भी बहुत रोचक है। वह कांग्रेस का कार्यकर्ता है। वह उपन्यास के आरंभ से लेकर संपूर्ण कथानक से किसी न किसी रूप से जुड़ा हुआ है। वह एक तरफ तो अपने समाज के पिछड़ेपन का प्रतिनिधित्व करता है तो दूसरी तरफ, राष्ट्रीय स्तर पर, गाँधीवाद के विद्रूप का उदाहरण भी प्रस्तुत करता है। बलदेव का जनता से हटकर पार्टी को महत्व देने लगना कांग्रेस पार्टी में आ रहे बदलाव को ही सूचित करता है। मानव सुलभ कमज़ोरियाँ उसमें थीं। किन्तु उसकेलिए पश्चात्ताप भी था।

कालीचरण 'मैला आँचल' का सर्वाधिक सक्रिय और जीवन्त पात्र है। मेरीगंज के जागरण का दूसरा श्रेय उसको है। वह पिछड़े और उपेक्षित आँचल की नयी पीढ़ी के विद्रोह को मुखरित करता है। वह एक कम पढ़ा- लिखा, अविकसित बुद्धि का युवक है। फिर भी उसके चरित्र में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो उसे लोकप्रिय बनाती है। अपनी सूझ-बूझ, विद्रोही भावना, समर्पित कार्यकर्ता तथा अपनी व्यक्तिगत ईमानदारी की वजह से उसका विशिष्ट महत्व है। वह संवेदनशील युवक है। पर वह अपनी सरलता के कारण तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की चालबाजी का शिकार हो जाता है और अपने

क्रांतिकारी चरित्र को धूमिल कर बैठता है। कालीचरण के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है उसके स्वभाव की दृढ़ता। अपनी पार्टी के प्रति कालीचरण की गहरी और विवेकशून्य निष्ठा ही उसके चरित्र को त्रासदी में बदल देती है।

आलोचकों ने एक स्वर से 'मेरीगंज' को 'मैला आंचल' के नायक के रूप में स्वीकार किया है। रेणुजी ने मेरीगंज की कल्पना एक पात्र के रूप में की है। उसके नामकरण से लेकर उसकी विशिष्ट पहचान तक के सभी पक्षों को उन्होंने सावधानी के साथ उद्घाटित किया है। एक और उल्लेखनीय बात यह है कि उपन्यास के अधिकांश पात्र मेरीगंज में रहते हैं। उपन्यास की कथा मेरीगंज गाँव से बाहर बहुत कम जाती है। रेणुजी को 'मैला आँचल' में पात्रों की रचना में अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई।

'मैला आँचल' की स्त्री पात्रों में लक्ष्मी,कमला और ममता महत्वपूर्ण पात्र हैं। लक्ष्मी एक अबोध बालिका है, जो मठ पर पालने-पोसने, पढ़ाने-लिखाने केलिए जो महंत सेवादास द्वारा लाई गई, लेकिन उसने उसके किशोरावस्था में पहुँचते ही उसका दैहिक शोषण करना आरंभ कर दिया। पर बेचारी लड़की वह उससे घृणा भी नहीं कर सकती थी। क्योंकि वह उसका अन्य भक्षकों से रक्षक है। लक्ष्मी दासिन एक बहुत ही आकर्षक व्यक्तित्व-सम्पन्न और अत्यन्त संवेदनशील पात्र है। सद्‌गुरु के सिवा उसका कोई नहीं है। वह सेवादास की रखैल बन जाती है। बाद में सामाजिक रूढ़ियों की परवाह न करके बालदेव से प्रेमबन्धन में बंधकर उसके साथ रहने लगी। उसके चरित्र की संवेदनशीलता और भावनात्मक संघर्ष उसे समस्त हिंदी कथा साहित्य संसार में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं।

कमला तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद की इकलौती बेटी है। उसकी सगाई की बातचीत तीन-चार जगह चलती है। पर कई विघ्नों के कारण सगाई हो न सकी। उसकी शादी न होने का मतलब लगाया जाता है कि लड़की में कोई-न-कोई दोष है। डॉ.प्रशांत के इलाज से वह हिस्टीरिया के दौर से मुक्त हो गयी। डॉ.प्रशांत और कमला के बीच का परिचय प्रेम का रूप ले लेता है और अंत में दोनों एक दूसरे को समर्पित हो जाते हैं।

डॉ.ममता उपन्यास में अल्पकाल केलिए आकर छा जाती है। डॉक्टरी प्राप्त करने के बाद वह शहर के गरीब मुहल्ले में यूनिट खोलकर सेवा-कार्यों में रत है। डॉ.प्रशांत द्वारा मेरीगंज में ही रहकर काम करने का निर्णय सुनकर वह उसके लक्ष्य हासिल करने की दिशा में प्रोत्साहित करती है।अपने प्रेमी को कमला के प्रेम में बंधा हुआ देखकर वह व्याकुल नहीं होती और न ही कमला के प्रति ईर्ष्या से जलती है।

उपन्यास में नारी-दृष्टिकोण को विविध रूपों में रेखांकित किया गया है। इसमें अवैध यौन सम्बन्ध और विकृतियाँ विविध रंगों में उभरी हैं। सभी साधु-सन्त यौन-पीड़ा से कुठित हैं। नारीवर्ग अनैतिकताओं और कुठाओं का शिकार बन गया है। सभ्य कहलानेवाले समाज में लड़कियाँ 'बल्ला की पैदाइश' समझी जाती है। लक्ष्मी के शोषण के द्वारा रेणु ने भारतीय समाज में स्त्री की वास्तविक स्थिति को अंकित किया है, विशेषकर निर्धन स्त्री की।

शिल्प की दृष्टि से भी 'मैला आँचल' हिंदी का एक अति विशिष्ट उपन्यास है। रेणुजी के शिल्प कौशल की शक्ति उनके द्वारा प्रयुक्त दृश्यात्मक प्रविधि में अधिक दिखाई देती है। इसमें दृश्यों की भरमार है। प्रसंगों को

एक साथ दृश्य-श्रव्य बनाने में रेणुजी को अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है। इसी प्रकार लोकगीतों और लोक कथाओं की कड़ियों की सहायता से कथा को अग्रसर करने की प्रविधि का भी रेणु ने बहुत अच्छा इस्तेमाल किया है। पात्रों के स्वगत चिन्तन के रूप में कथा प्रस्तुत करने की प्रविधि भी 'मैला आँचल' में खूब काम में लायी गयी है।

'मैला आँचल' में रेणुजी का उद्देश्य एक पिछड़े अंचल के बहुमुखी यथार्थ के चित्रण के साथ-साथ पूरे देश के राजनीतिक माहौल और बदलती हुई मानसिकता का चित्र अंकित करना है। इसकेलिए उन्होंने जो कथा- संसार निर्मित किया है उसमें अनेक तरह के लोग हैं जिनकी मानसिकता, सोच ,सांस्कृतिक स्तर आदि के अनुरूप भाषा में वैविध्य की सृष्टि आवश्यक थी। इसकेलिए कथाकार सर्वत्र एक तरह की भाषा का प्रयोग नहीं करता है। जहाँ उसे सीधे कथा कहनी होती है वहाँ वह सरल परिनिष्ठित हिंदी का प्रयोग करता है। पर कथाकार जब कथा के बीच में प्राकृतिक सौंदर्य का अंकन करने लगता है तो उसकी भाषा तत्सम शब्दावली और सहज स्वाभाविक अलंकारों से दीप्त मनोहर बन जाती है। जहाँ निरक्षर ग्रामीणों का प्रसंग आता है वहाँ भाषा एकदम आम बोलचाल की परिनिष्ठित हिंदी पर उतर आती है। कहीं-कहीं कथाकार अपने ग्रामीण पात्रों की कथा प्रस्तुत करते समय वह अपभ्रष्ट शब्दों का भी प्रयोग करने लगता है। इस प्रकार कथा की प्रस्तुति में उसके अनुरूप भाषा की योजना करके उपन्यासकार भाषा में वैविध्य की सृष्टि करते हैं। ये शब्द पूर्णिया अंचल के गरीब और पिछड़े किसानों की पहचान निर्मित करते हैं। 'मैला आँचल' की भाषा की एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि रेणु ने ग्रामीण पात्रों की भाषा में भी वैविध्य पैदा कर दिया है। लेकिन शिक्षित पात्रों की भाषा शिष्ट-परिनिष्ठित हिंदी है जो अलग-अलग पेशों और स्वभाव के अनुसार अपना रूप बदलती है। श्री नलिन विलोचन शर्मा ने लिखा है- "मैला आँचल की भाषा से हिंदी समृद्ध हुई है। रेणु ने कुशलता से ऐसी शैली का प्रयोग किया है, जिसमें आँचलिक भाषातत्व परिनिष्ठित भाषा में घुलमिल जाते हैं।"[7]

इस प्रकार हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध क्रांतिकारी उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणुजी ने अपने 'मैला आँचल' उपन्यास में बिहार के ग्रामांचलों का अनूठा और अद्‌भुत चित्रण प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के माध्यम से शोषित और शोषक का मार्मिक एवं वास्तविक चित्रण रेणुजी ने किया है। इसी कारण यह उपन्यास हिंदी साहित्य का 'मील का पत्थर' बन गया है।असल में हिंदी में ग्रामीण जीवन पर लिखनेवाले रचनाकारों में रेणुजी का अप्रतिम स्थान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1.राजेन्द्र अवस्थी,आँचलिक कहानियाँ,पृ.सं.6
2.फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, भूमिका
3.फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल ,भूमिका
4.मैला आँचल, फणीश्वर नाथ रेणु, पृ.सं.117
5डॉ.कमलाकांत पाठक,यूनियन मगज़ीन,1958
6.फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृ.सं.338
7.आलोचना, अप्रैल, पृ.स.106

◆ सहायकआचार्या,
हिंदी विभाग,
एस.एन.जी.एस.कॉलेज, पट्टाम्पि,
पालक्काट-679306.

रेणु की नैनाजोगिन

♦ डॉ.चन्द्रवदना.जी

हिन्दी कहानी के क्षेत्र मं प्रेमचंद के बाद के बहुचर्चित कहानीकारों में महत्वपूर्ण कहानीकार हैं फणीश्वर नाथ रेणु। उनकी एक छोटी-सी कहानी है 'नैना-जोगिन'। कहानी की मुख्य पात्र हैं रतनी (नैनाजोगिन),रतनी की माँ, रतनधन, माधो बाबु,रमेसर और रमेसर के माँ-बाप। रतनी और उसकी माँ गाँव के हर एक को गाली देती हैं और किसी प्रकार की चोरी करने में कोई हिचक नहीं करती हैं। इलाके के मशहूर डकैत, मुखिया, ज़मींदार, सभी उन दोनों की उँगली पर नाचते है। गाँव का मुकदमा भी माँ-बेटी चलाती हैं। इसके खिलाफ आवाज़ उठाने की हिम्मत भी किसी को नहीं है। यों पूरे गाँव का नियंत्रण यानी सत्ता उनके हाथ में है। साँझ के समय में गाँव की सारे डाके की चीज़ें उनके आँगन में होंगी। दिनभर हर टोले में दोनों घूम-घूम कर झगड़ा करती हैं। रतनी अकेली बकरे का निबाह कर देती है तो माँ चोरी का माल खरीदती है। लेकिन रसीली बात यह है कि गाँव में माधो बाबू को छोड़कर बाकी सारे लोग यानी गाँव के अमीर-गरीब, बच्चे-बूढे, सभ्य-असभ्य जैसे सभी श्रेणी के लोग दोनों की गाली के शिकार बनते हैं। बहुत समय के बाद शहर से आये माधो बाबू रतनी की गाली के संबन्ध में अपने परिवारवालों से कहने पर वे लोग कहते हैं कि उसकी गाली में ध्यान देने की तुझे क्या ज़रूरत है,साँझ के पहले मैदान से घर आओ,या तो शहर में ही लौटो। वह स्वयं कहता है- "अजब इंसाफ है गाली सुनकर समझना अन्याय है! असभ्यता है! मन में मैल हैं है मेरे? अतः माधोबाबू सचेतन रूपेण यानी कविता में प्रयुक्त बिम्ब प्रतीक के समान सभी गालियों के आस्वादन एवं विश्लेषण करता है। दोनों के घर भी निकट हैं। रतनी के मत में 'भला आदमी' जैसा कोई रूपक नहीं है। माधो बाबू के मन में ऐसा विचार आया है कि रतनी के बारे में कुछ नहीं लिख जाएगा तो जीवन में कभी नहीं लिख जाएगा। क्योंकि रतनी की गालियों में मर्माहत और अपमानित करने के अलवा उत्तेजित करने की तीव्र शक्ति है यह मैं हलफ लेकर कह सकता हूँ।" फलतः माधो बाबू ने सोचा कि रतनी और माँ की गाली का वास्तविक कारण क्या होगा? कभी कभी माधो बाबू को लगा कि छोटी जाति की औरत गाँव की मालिकिन होने की वजह होगी। लेकिन बाद में समझा कि असली बात यह नहीं है। माधो बाबू कई बार रतनी के सामने परास्त हुआ, हथियार डालना चाहता था, फिर भी वे एक नंगी औरत के सामने घुटना टेकना नहीं चाहते थे। अतः ललकार के रूप में संवेदनशील माधो बाबू रतनी के स्वभाव का वास्तविक रहस्य खोजता है। यह खोज है यह कहानी, 'नैना-जोगिन'।

सात-आठ साल की उम्र में ही माधो बाबू रतनी से परिचित है। माधो बाबू रतनी को नैना-जोगिन नाम से पुकारता है। रतनी की विधवा माँ गाँव के किसी बूढ़े धनवान की हवेली में काम करती थी। उस समय बूढ़े की पोती की ही उम्र थी रतनी की। रतनी को धनवान वृद्ध की विकृत मानसिकता की शिकार बननी पड़ी थी। पंचायत के सामने सात साल की वह बालिका अपना बयान असली भैरवी के ही समान बुलंद आवाज़ में साफ-साफ कहने पर भी कोई भी उसके पक्ष में नहीं

थे।गाँव रंडी की छाप माँ-बेटी पर अंकित करने की भीड़ में माधो बाबू और उनके भाई भी थे। परिणामतः वे गाँव में अकेली पड़ गयीं। सात-आठ साल की रतनी के मुकदमे में आकृष्ट होकर माधो बाबू ने रतनी को नैनजोगिन नाम दिया। तभी से माँ-बेटी प्रतिरोध के रूप में सबों को बिना हिचक से गालियाँ देती हैं। मुख्य रूप से गाली दो बात पर है। एक अपने परती ज़मीन पर किसी की बकरी-भैंस हैं तो दूसरी, पुराने ज़मींदार हो या मालिक अपनी रैयत पर गुस्सा उतरता है तो गाली ज़रूर है। उन्होंने अपने मुँह के ज़ोर से ही पन्द्रह एकड़ ज़मीन हासिल की है। अर्थात् जीने की सभी संपत्ति उन्होंने ज़मींदारों की रसोई का काम किये बिना दूसरों को गाली देकर अर्जित की है।

दिन बढता रहा,अश्लील और घिनौने मुकदमे के कारण रतनी की बदनामी बचपन से ही फैलती गयी। बढ़ने के साथ बदनामी भी बढ़ी। कोई दूल्हा नहीं मिला। मिलता भी तो घर जमाई होकर रहना नहीं चाहता था। अंत में किसी गाँव से आये रतन धन नामक एक युवक से माँ ने बलपूर्वक रतनी की शादी करवाई। यह जवान न जाने किस गाँव से आया साँझ में और रात में भात खाने केलिए घर के अंतर गया तो रतनी की माँ एक हाथ में सिंदूर की पुड़िया और दूसरे में फरसा लेकर खड़ी थी। उससे कहा कि में सिंदूर डालो,नहीं तो अभी हल्ला करती हूँ,घर में चोर घुसा है। लेकिन समय बीतने पर भी रतनी गर्भवती नहीं हुई। वह एक दम का रोगी था। रतनधन को धातुपुष्टि केलिए विशेष खाना-पीना भी दे दिया गया। परंतु कोई असर न होने से एक दिन उसे घर से बाहर निकाला। रतनी कहती है- लोग दोख देते हैं मरी कोख को, कि रतनी बाँझ हए। नमकहराम और किसको कहते हैं?

रमेसर के परिवार के लोग माधो बाबू के घर के नौकर हैं। गाँव में रतनी और माँ से टोका देनेवाली केवल एक है,वह रमेसर की माँ है। कल हाट जाते समय रतनी की टोकरी रमेसर की माँ ने नहीं ढोयी थी, सो इस बार का झगड़ा रमेसर के घर की ओर मुड़ा। "तू किसका डर दिखलाती है? सहर से आए भतार का? रोज़ मांस मंछली और ब्राँडिलपि कर तेरे (प्रजास्थान में) तेल बढ़ गया है! एँ...?" यह सुनकर माधो बाबू एकदम परेशान हुए, क्योंकि अगले क्षण उसके मुँह से क्या निकलती होगी। हर झगड़े के बीच में वह रमेसर की माँ और माधो बाबू को जोड़कर कहती रहती थी। रतनी रमेसर की माँ से हमेशा एक चेतावनी के रूप में कहती है कि शहर के लोग सफेद वस्त्र पहनते हैं, पर उनके दिल काले हैं। ऐसे लोगों के बलबूत्ते पर बातें न करो। रतनी के ही शब्दों में.. "बगुला पंखी धोती-कुरता और घडी छड़ी जूतवाले शहरी छैलचिकनियाँ लोग ऊपर से लकदक और भीतर फोक होते हैं।" इस सन्दर्भ में रतनी आत्मविश्लेषण करना भी नहीं भूलती है- "सफाचट मोंछ मुंडाए मुछमुंडा लोगों की सूरत देख कर भूलनेवाली बेटी नहीं रतनी!.... रतनी की माँ को इसका गुमान है कि बड़े-बड़े वकील मुखतार के बेटों को देख कर भी उसकी बेटी की अथि अर्थात जीभ नहीं पनियायी कभी। डकार भी नहीं किया।"

एक सप्ताह तक चोरी करवाने के बाद रतनी ने एक नया युद्ध शरू किया। रातभर माधो बाबू के घर पर हड्डियाँ बिखेरकर ताल-लय से गाली देकर दोनों ललकार कर रही हैं- "मर्द का बेटा है तो मैदान में आ...!" इस बार उन्हें मैदान में उतरना ही पड़ा, क्योंकि दरवाज़े के निकट, बाग में लगाये नये पौधों में भैंस के बच्चे की घुसाहट जैसे उन्हें लगा। लेकिन भैंस के बच्चे के बदले पौधे के कोमल पत्तों को तोड़नेवाली रतनी का हाथ

पकड़ लिया। रतनी के सामने हर बार पराजित माधो बाबू को अपनी अस्मिता का अहसास होने लगा- "कलम घिसाई के बाबजूद पंजे की पकड में अब तक खम बचा हुआ था।" माधोबाबू ने पूछा कि 'तुम...इस तरह मेरे पीछे क्यों पड़ी हो? इस पौधे को क्यों तोड़ा है?' उसने उत्तर दिया- 'वह तो पौधा ही है। जी तो आपको ही तोड़ देने को करता है।...हाथ छोड़िए।' रतनी माधो बाबू से आधे मन से प्रतिरोध करती है। रतनी हंसी। उस पल माधो बाबू ने रतनी के चेहरे में एक नई ज्योति देखी। रतनी की सात-आठ साल की कुछ यादें 'फ्लैशष्बैक' के समान उसके स्मृतिमंडल में चमकने लगीं। आश्चर्य से पूछा- 'तुम नैन जोगिन...।!' रतनी माधो बाबू से सटकर खड़ी हो गई। बाद में रतनी ने वर्षों से अनुभूत दमघोट वेदना एक-एक करके माधो बाबू के सामने पेश की -"मेरा क्या कसूर है जो बारह साल से वनवास दिए है आप लोग! उस बढ़े को करनी का फल चखाया तो क्या बेजा किया? ....गाँव के लोग कहते थे कि पाँच साल तक मेरी माँ का दूध पीकर उस गोद में पली । कभी भी आपकी आँख गीली नहीं हुई थी। मैं जवान हो गई ,आप लोगों ने आँख उठा कर कभी देखा नहीं कि गाँव घर की एक लड़की ऐसी जवान हो गई और शादी क्यों नहीं होती?...अब इस बार आए हैं तो कभी आपके मन में यह नहीं हुआ कि रतनी की शादी हुए ढाई साल हो रहे हैं और रतनी को कोई बच्चा क्यों न हुआ?....आखिर रतनी की माँ का दूध साल भर तक पिया है आपने। रतनी की माँ को बहुत दिन तक आपने माँ कहा था, लोगों को याद है।...दूध का भी एक संबंध होता है।" कलम घिसे हाथ ने रतनी के मामले में अशक्त होकर कहा.. "रतनी ! रमेसर जग रहा है।..मैं कुछ नहीं समझता। तुम जाओ कोई देख लेगा!' उस वक्त रतनी में ज़रा भी कसूर का भाव नहीं था, प्रत्युत् माधो बाबू की दशा ठीक विपरीत थी। वह अपनी बोली ज़ारी रही- 'बोलिए, मैं पापिन हूँ? मैं अछूत हूँ? रंडी हूँ? जो भी हूँ,आपकी हवेली में पली हूँ...तकदीर का फेर...माधो बाबू..रतनी नाम भी आपके ही बाबूजी का दिया है।आपने उसको बिगाड़कर नैना जोगिन दिया! किस कसूर पर?आप लोगों का क्या बिगाडा था रतनी की माँ ने जो इस तरह बोलचाल,उठ-बठै एकदम बंद।"

अनजाने माधो बाबू ने कहा "ऐसे गाँव में भला आदमी कैसे रह सकता है? ठेस लगे नागिन की भाँति डसने लगी भला आदमी? भला आदमी? भला आदमी को पूँछसिंग होता है?" "नहीं होता है। इसलिए..।" "पूछसिंग..जानवर..औरतमर्द...नंगे...बेपर्द... अंधकार..प्रकाश..गुर्राहट..आखंकीचमक..बडे-बडेनाखुन..बिल्ली...शिवा... गृद्धासया.....योनिस्याभगिनी... भोगिनीमहांकुश...स्वरूप... छिन्नमस्ता अट्टहास..!" स्वयं भला आदमी के रूप में विशेषित माधो बाबू के सामने रतनी एक भली स्त्री को शिवा के दस रूपों द्वारा अनावृत कर दिखाती है। उस वक्त माधो बाबू को अपने सामने खड़ी रतनी देवी तारा या नील सरस्वती के समान लगी। उस पल से वह सुसंस्कृत रतनी में ढाली गई। रतनी का भाव-परिवर्तन गाँव में फैल गया। गाँववाले कहते हैं - "नैना-जोगिन का 'जोग' माधो बाबू पर खबा ठिकाने से लगा है!....रतनी ने माधो बाबू को 'भेडा' बनाया हैतो माधो बाबू ने रतनी का 'विषदंत' उखाड दिया है। बोले तो एक भी गाली-गंदी या अच्छी?' रतनी की बेचैनी का वास्तविक कारण माधो बाबू ने समझ लिया। फलस्वरूप रतनी और उस्के नामर्द मर्द को डॉकटर को दिखाने के लिए अपने साथ शहर लेता आया। पाँच दिन

(शेष पृ.सं. 47)

क्रांतिकारी के रूप में फणीश्वरनाथ रेणु ('नेपाली क्रांति-कथा' रिपोर्ताज के आधार पर)

♦ डॉ. बिंदु.सी.आर

अपने रास्ते में चलकर बातों को खुलकर लिखनेवाले बहुत विरले ही साहित्यकारों में श्री फणीश्वरनाथ रणु का महत्वपूर्ण स्थान है। क्रांति और कल्पना का सामन्वित रूप आप के साहित्य में विद्यमान है। 'रेणु' हिंदी के विखयात ऑचलिक उपन्यासकार एवं कहानीकर हैं। हिंदी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में आप ने एक नयी विधा को अपनाया। आपने एक अंचल विशेष को उपन्यास की पृष्ठभूमि बनाकर अपने उपन्यास को 'आंचलिक उपन्यास' घोषित किया। हिंदी उपन्यास क्षेत्र में यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन था। प्रथम आँचलिक उपन्यासकार का श्रेय इस प्रकार आपको मिला।

श्री फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के पूर्णिया जिले में हुआ। इनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। अपने ही गाँव में प्राथमिक शिक्षा की पूर्ति के बाद मेट्रिक नेपाल के कोइराला परिवार में रहकर विराट नगर के आदर्श विद्यालय में किया। इंटरमीडिएट कशी हिन्दू विश्वविद्यालय में किया। सन् 1942 में आपने स्वंतन्त्रता-संग्राम में भी भाग लिया। इसका एक कारण भी है, रेणु का बचपन आज़ादी की लड़ाई के साथ गुज़रा है। कृषक पिताजी स्वराजआन्दलन के नेता थे। घर में चरखा चलाकर, खादी पहनकर देश के स्वतंत्रता-संग्राम में पिताजी ने अपनी भूमिका निभाई। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा के समय से लेकर घरवालों से प्रेरणा पाकर सन् 1942 में स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़े। जब मेट्रिक केलिए नेपाल चले तब सन् 1950 में नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलनों में भी सक्रिय भागीदारी दी। इसके फलस्वरुप नेपाल में प्रजातंत्र की स्थापना हुई। इसके बारे में नेपाल के प्रजातंत्र के मुख्य सेनानी एवं रेणुजी के आत्ममित्र श्री विश्वेसर प्रसाद कोइराला ने इस प्रकार बताया हे :- "वह प्रचतन्त्र का प्रचंड योद्धा था। नेपाल में प्रजातन्त्र के हमारे संघर्ष में उसने कंधे से कंधे मिलाया। राणा शासन को अपदस्थ करने के हेतु नेपाली कांग्रेस ने सन् 1950 में जो सशस्त्र क्रांति छेड़ी थी, उसमें रेणु भी शामिल हो गया और मुक्ति सेना की फौजी वर्दी में मेरे साथ बन्दूक लेकर मोर्चे पर कूद पड़ा।"[1]

सन् 1954 में प्रकाशित 'मैला आँचल' से लेकर आपने आंचलिक उपन्यास की यात्रा शुरू की। बाद में आपके 'परती परिकथा', 'जुलूस', 'दीर्घतपा', 'कितने चौराहे', 'पालटू बाबू रोड', 'कलंक मुक्ति' आदि अनेक उपन्यास निकले।

'एक आदिम रात्रि की महक' , 'ठुमरी' , 'अग्नि खोर', 'अच्छे आदमी' आदि कहानी संग्रह ने भी आप की कीर्ति को ऊँचा उठा दिया है।

नेपाल में हुए आन्दोलनों को मुख्य विषय बनाकर आपने आधुनिक गद्यविधा रिपोर्ताज पर दृष्टि डाली। आपके मुख्यतया तीन रिपोर्ताज निकले हैं 1.सरहद के उसपार, 2.विराट नगर की खूनी दास्तान और 3. नेपाली क्राँति-कथा।

'नेपाली क्रांति-कथा' में आपने नेपाल में हुई

स्वतंत्रता की लड़ाई को संवेदात्मक शैली में साहित्यिक धरातल पर प्रस्तुत करने की कोशिश की। यहाँ हम रेणु को एक सच्चे क्रांतिकारी के रूप में देखते हैं। स्वराजियों के मन में क्रांति की चिनगारी डालने युक्त सशक्त भाषा इस रिपोर्ताज में हम देख सकते हैं। एक युद्ध का साकार वर्णन यहाँ हुआ है।

अपने घर से निकले स्वराज-आन्दोलन की प्रेरणा से आपने अपनी क्रांति केवल भारत के अन्दर ही नहीं बल्कि नेपाल तक फैलायी। उसका जीवित प्रमाण है 'नेपाली क्रांति-कथा'। नेपाल के राणाशाही के शासन एवं जनता पर उनके द्वारा किए गए अत्याचारों पर तंग होकर जनता ने जो क्रांति मचाई, उसमें 'रेणु' ने एक सच्चे सैनिक की हैसियत से भाग लिया। 'नेपाली क्रांति-कथा' में आपने राणाशाही के विरुद्ध हुए मुक्ति-संग्राम का वर्णन विस्तृत रूप से किया है। नेपाल में हुए इस क्रांति-युद्ध में सिंगापुर ,मलया,और बर्मा के सैकड़ो प्रवासी नेपाली और गुर्खे शामिल हुए। आपके शब्दों में :- "मलाया , बर्मा, सिंगापुर और कोहिमा के मोर्चे पर लड़ते हुए अनेक अनुभवी गूर्खों ने स्वेच्छापूर्वक इस संग्राम में भाग लेने की इच्छा प्रकांड की है।"[3] इस क्रांति के उद्‌भव के बारे में आपने अपनी किताब में इस प्रकार बताया है- "नवंबर 1950 !! नेपाल के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा।

पटना के दैनिक पत्रों में विराट नगर और छापा की चढ़ाई के समाचार पढ़कर ,नेपाली कांग्रेस के सभा-पति श्री मातृका प्रसाद कोइराला के अभिनन्दन और जन क्रांति के समर्थन में पटना के प्रवासी नेपालियों ने एक विशाल सभा का आयोजन किया। और जब यह सभा समाप्त हुई, सैकड़ों प्रवासी नेपाली मुक्ति सेना में नाम लिखा चुके थे - छात्र, डॉक्टर, व्यापारी, बुद्धिजीवी, पत्रकार, श्रम जीवी - सभी वर्गों के नेपाली।"[4] यहाँ इस स्वतंत्रता संग्राम से नेपाली जनता केवल राजनीतिक स्वतंत्रता ही नहीं, बल्कि आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता भी चाहते थे। अपने प्राणों की आहुति देकर सैकड़ों योद्धाओं ने इसे संपन्नऔर सफल किया। इस युद्ध में औरतें भी पीछे नहीं चलीं। उनकी प्रतिज्ञा भी इसप्रकार गूँजती है :- "राणाशाही जुल्म और अत्याचार का डटकर मुकाबला करुँगी। सिर नहीं झुकऊँगी।"[5] हरेक नवयुवकों की आँखों में मुक्ति पाने की और नेपाल को मुक्त करने की चाह थी। सबके मुँह से निकलनेवाले मंत्र भी एक था। जय नेपाल। बहिन भाई को ,पत्नी पति को, माँ-बाप बेटों को युद्ध में विजयी बन जाने के आशीर्वाद देने का दृश्य रोचक है। लेकिन पहले राणाशाही के बन्दूकों के सामने परास्त नेपाली मुक्ति सेना फिर सशक्त तैयारी के साथ आगे बढ़ती है। कभी कभी साथ देनेवालों की मृत्यु देखकर कुछ घबराते हैं। लेकिन राणाशाही से जूझने केलिए तैयार होनेवाला देश अंतिम विजय अपनाता है।

नेपाल में हुए इस मोचन युद्ध में नेपालियों के साथ कई भारतीय भी शामिल हुए थे। लेकिन भारतीयों के प्रति नेपाली जनता के मन में शंकाएँ बाकी रहीं। वहाँ भी रेणु जी नेपाली जनता का समर्थन करते हुए इस प्रकार कहते हैं :- "आठ वर्ष की उम्र से ही मैं नेपाल की धरती पर पला हूँ। नेपाली कितने टची (स्पर्श कातर) होते हैं ,जानता हूँ। यह भी जानता हूँ कि नेपाल की आम जनता के दिल में भारत और भारतीय के प्रति तनिक 'खटखटपन' सदा से रहता आया है। भारतीय उन्हें हेय दृष्टि से देखते हैं ।"[6] लेकिन भारत लौटने से पहले रेणुजी भारत के प्रधानमंत्री के नाम नेपाली जनता का समर्थन करके पत्र लिखना चाहते हैं और भारतीय

राजदूत के बरताव पर शिकायत करना चाहते हैं। अंत में एक सच्चे क्रांतिकारी के रूप में आप कहते हैं :- "नेपाल मेरी सानो अम्माँ नेपाल मेरी मौसी अम्माँ। मेरा नमस्कार ग्रहण करो।"[7]

दमन व शोषण के खिलाफ़ लड़नेवाले रेणु ने अपनी ज़िन्दगी में एक हाथ में कलम और दूसरे हाथ में हाथियार लेकर चले। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में सक्रिय भागीदारी देने के बाद नेपाल की स्वतंत्रता केलिए लड़ी। मातृराज्य के समान आश्रय देनेवाले देश को भी उन्होंने मातृदेश के सामान स्वीकार किया। अपनी रचनाओ में भोगी हुई ज़िन्दगी का चित्रण व्यक्त है। साहित्य एवं क्रांति को समान रूप से अपनाकर भारत से नेपाल तक आपने अपना कर्मक्षेत्र विस्तृत कर दिया। साथ ही दोनों देशों के प्रति अपना दायित्व भी अच्छे ढंग से निभाया।

संदर्भ

1. 'रेणु और मैं'- (लेख) विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला नेपाली क्रांति- कथा (राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ,पटना) पृ.5.
2."जिस रचना में वर्ण्य विषय का आँखों देखा तथा कानों सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाये कि पाठक की हृतंत्री के तार झंकृत उठे और वह उसे भूल न सके, उसे रिपोर्ताज कहते है।" हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ.नागेंद्र (मयूर पेपर बैक्स, ए-95, सैक्टर-5,नौएडा-201301), पृ. 729
3. 'नेपाली क्रांति-कथा'- फणीश्वरनाथ रेणु- पृ. 24
4. वही - पृ. 25 5. वही - पृ. 25
6. वही - पृ 92 7. वही –पृ.94

♦ अध्यापिका
सरकारी हयर सेकेंटरी स्कूल

सही उत्तर चुनें

(पृ.सं.13 के आगे)

5. 'कितने चौराहे' किस विधा की रचना है?

अ) कहानी आ)यात्रावृत्त
इ) रिपोर्ताज ई)उपन्यास

6. रेणु का जन्म किस गॉव में हुआ?

अ) परानपुर आ) परमानपुर
इ) औराही हिंगना ई)मेरीगंज

7. रेणु किस राज्य के हैं?

अ) राजस्थान आ)बिहार
इ) दिल्ली ई)बंगाल

8. रेणु का प्रथम उपन्यास कौन-सा है?

अ) दीर्घतपा आ)कलंक मुक्ति
इ) परती परिकथा ई)मैला आंचल

9. हिन्दी का प्रथम आंचलिक उपन्यास कब प्रकाशित हुआ?

अ)1936 आ)1954
इ) 1950 ई)1947

10.रेणु का जन्म-वर्ष कौन-सा है?

अ)1954 आ) 1921
इ) 1919 ई)1927

11. 'संस्मरणात्मक रिपोर्ताज' कौन-सा है?

अ) नेपाली क्रान्ति कथा आ) परती परिकथा
इ) पंचलाइट ई) ऋणजल धनजल

12. बाढ़ और सूखे की प्राकृतिक घटनाओं से सम्बद्ध रचना कौन-सी है?

अ) मैला आंचल आ) परती परिकथा
इ) ऋणजल धनजल ई) दीर्घतपा

(शेष पृ.सं. 34)

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'परती परिकथा'

♦ डॉ.पी.के.प्रतिभा

वर्तमान समय में उपन्यास साहित्य का महत्व एवं लोकप्रियाता अप्रतिम है। सामाजिक यथार्थ का तीखा वर्णन जितना अधिक 'उपन्यास' में मिलता है उतना अन्य किसी साहित्यिक विधा में संभव नहीं है। हिंदी साहित्य के इतिहास में भी अन्य भाषा साहित्यों के समान उपन्यास साहित्य का विशेष विकास और उत्कर्ष हुआ है। हिंदी उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत स्वतंत्र्योत्तर युग में एक नये औपन्यासिक प्रकार का आविर्भाव हुआ था, जो आगे चलकर 'आँचलिक उपन्यास' के नाम से प्रचलित हो गया। उपन्यास के क्षेत्र में 'अंचल' का प्रायः मान्यता प्राप्त अर्थ इस प्रकार है- "कोई स्थान विशेष अर्थात् भौगोलिक सीमाओं से घिरा हुआ कोई जनपद या क्षेत्र।"[1]

'आँचलिक उपन्यास' स्वातंत्रोत्तर भारतीय जन जीवन का दर्पण होता है। "आँचलिक उपन्यास अंचल विशेष का दर्पण प्रस्तुत करे, उसमें हम वहाँ के जनजीवन को, वहाँ की प्रकृति को, वहाँ की वेशभूषा और भाषा को पूरी डिटेल में देख सके।"[2] देशकाल, जाति, धर्म, भौगोलिक स्थिति, आर्थिक प्रणाली, सामाजिक संगठन, रीति, नीति, भाषा आदि से निर्मित क्षेत्रीय जीवन का आख्यान ही 'आँचलिक उपन्यास' का विषय है।

फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाकार हैं। उन्होंने अनेक गद्य विधाओं में अपनी कलम चलाई। लेकिन हिंदी साहित्य में वे उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं। वे समकालीन ग्रामीण भारत की आवाज़ को उठाने तथा सामाजिक स्थितियों को कथा के माध्यम से चित्रित करने केलिए पहचाने जाते हैं। 'परती परिकथा' रेणु का दूसरा उपन्यास है। उन्होंने इसकी रचना सन् 1957 में की थी, जबकि नेहरू सरकार को खाद्यान्न समस्या को हल करने केलिए हरितक्रांति का विकल्प खोजना पड़ा। इसमें उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारत के पिछड़े हुए गाँवों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन के यथार्थ को गहराई से चित्रित किया है। इसमें गाँवों के बनते-बिगड़ते जीवन की छवि को अत्यन्त गहराई के साथ प्रस्तुत किया है। 'परती परिकथा' की कथाभूमि पूर्णिया अंचल ही है। इसमें इसी परती भूमि और उसके एक किनारे पर बसे परानपुर गाँव की कथा प्रस्तुत की गयी है। परानपुर गाँव कथा के केन्द्र में है। 'परती परिकथा' में 1953-56 के समय की कहानी प्रस्तुत की गयी है। परानपुर गाँव के लोगों के जीवन को वहाँ के परिवेश, भाषा, वेशभूषा आदि के परिप्रेक्ष्य में रखकर रेणुजी ने प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में अपढ़ ग्रामीणों, अक्षरकट्ट युवकों, स्कूलों और कॉलेजों में पढ़नेवाले छात्रों, जातिवादी संस्कारों से ग्रस्त नर-नारियों, घुमन्तु और नारदी प्रवृत्ति की स्त्रियों, सभी राजनीतिक दलों की शाखाओं के अधकचरे नेताओं, लोककथा-गीतों के गायन, लोकनाटकों के मंचन आदि के यथार्थ का चित्र उपलब्ध होते हैं। नव निर्माण के बीच टूटते हुए गाँवों का प्रतिनिधित्व करता है यह गाँव।

वह गाँव पहले समृद्ध रहा है। लेकिन अब धूसर हो गया है।

रेणु ने पूर्णिया के लाखों एकड़ वन्ध्या परती जमीन को हरे-भरे बागों और लहलहाते हुए खेतों में बदलने का स्वप्न देखा था। अपने इसी विज़न को प्रस्तुत करने केलिए उन्होंने परानपुर स्टेट के ज़मीनदार पुत्र जितेन्द्रनाथ मिश्र को शहर से गाँव में बुलाया है, जहाँ उसकी प्रेमिका ताजमनी ही नहीं, सूखी बंजर धरती भी अपने उद्धार केलिए प्रतीक्षा कर रही है। 'परती परिकथा' के अपढ़ किसान, कुसंस्कार ग्रस्त पिछड़ी मानसिकता के ग्रामवासी, मिश्र परिवार के प्रति द्वेष और प्रतिहिंसा से ग्रस्त युवा नेता आदि जितेन्द्र का गाँव लौटना पसन्द नहीं करते और वे हर कदम पर उसका विरोध करते हैं। पर इस संघर्ष में अन्ततः विजय जितेन्द्र की ही होती है और वह वन्ध्या धरती को गुलाब के फूलों और नये ढंग के वृक्षों से हराभरा बना देता है। रेणु ने ग्रामीण जीवन में वैज्ञानिक पद्धति से परिवर्तन की कल्पना की है। कोसी बांध के प्रसंग में पुरातन गाँव में वैज्ञानिक पद्धति की कल्पना दिखाई पड़ती है। कोसी की विनाश शक्तिलीला से ग्रामीणों को मुक्त कराने में भी जितेन्द्र को उनका हृदय-परिवर्तन करना पड़ता है। लुत्तो के नेतृत्व में इसके विरुद्ध एक ज़बरदस्त किसान आंदोलन होता है, जिसमें जितेन्द्र किसानों को इस योजना की उपयोगिता समझाने में सफल होता है और आंदोलन तितर-बितर हो जाता है। 'परती परिकथा' मात्र परती ज़मीन की कथा न होकर ग्रामीणों के परती मन की कथा भी है।

इस प्रकार भूमि की समस्या ही इस उपन्यास का केंद्रीय तत्व है। परती पड़ी हुई ज़मीन को जोड़कर फसल उगाना, रूढ़िवादी किसानों को वैज्ञानिक विधि से कृषि करने केलिए प्रेरित करना, खाद-बीज यंत्रों की सुविधा प्रदान करना, नदियों पर बाँध बनाना और किसान कल्याणकारी योजना का विस्तार से चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। उपन्यास के अन्त में कोशी नदी घाटी योजना का एक कार्यक्रम परानपुर में लागू होता है जिसमें गाँवों किनारे बहनेवाली दुलारदाय नदी को नहर में बदलकर हज़ारों एकड़ परती ज़मीन को खेती के योग्य बना देने का लक्ष्य है। इस प्रकार इस उपन्यास में जितेन्द्र नामक मुख्य पात्र के माध्यम से सामंती प्रवृत्तियों को जड़ से उखाड़ फेंकने व परानपुर गाँव की परती भूमि पर, कोसी बाँध बनाकर खेती करने और ग्रामवासियों में लोकप्रिय होने के उदाहरण देकर मानवतावादी सन्देश देते हैं। साथ ही अंचल की भौगोलिक स्थिति, जलवायु, वेशभूषा, आवास, व्यवसाय, भाषा, लहजा, व्यवहार, साहित्य एवं कलारूप, सामाजिक गठन, जनता की मान्यताएँ और विश्वास जैसी बातों पर प्रकाश डालते हैं।

उपन्यास की पृष्ठभूमि स्वतंत्रता के बाद के सामंती युग से निकलकर लोकतंत्र के युग में कदम रखने के धड़ाधड़ करनेवाले जनजीवन का जीवंत दस्तावेज़ है। इस प्रकार इस उपन्यास में देशकाल और वातावरण की समुचित संयोजना हुई है। 'परती परिकथा' में मूलतः ज़मीन्दारी उन्मूलन और भूमि के पुनर्विभाजन की पृष्ठभूमि में परानपुर गाँव के पुनर्निर्माण की कथा है।

इस उपन्यास की नारियाँ सामाजिक विकृतियों का नंगा स्वरूप झेलती ही नहीं, बल्कि उन विकृतियों से मिली पीड़ा का अनुभव भी करती हैं। उन नारी पात्रों की खास विशेषता है कि वे त्रासदी सहती हैं, फिर भी

समस्या के समाधान की तलाश करने का महत्वपूर्ण प्रयास करती हैं। उपन्यास की एक पात्र मलारी परंपरागत जाति के बंधन को तोड़कर शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति विकास के पथ पर चलती विद्रोही नारी है। और एक पात्र ताजमनी, परंपरागत नटिनों की रक्षिका होने से चारित्रिक अधपतन की कुरीति से नटिन टोली की औरतों के जीवन में सुधार लाना चाहती थी। ताम्रमूर्ति होंठों पर मुस्कुराहट, अंचलवासी उसे भले जित्ता की रक्षिका कहें, परंतु ताजमनी प्रेमिका से भी अधिक ममतामयी वास्तल्य की मूर्ति है। जित्तिन ताजमनी से अपने को सुरक्षित पाता है। रेणुजी के अनुसार "जितेन्द्रनाथ को अचरज हुआ ताजमनी के कंठ में बैठकर माँ बोल रही है। ताजू के चेहरे पर स्पष्ट छाया माँ की एक परिचित मुस्कान थी।"[3]

'परती परिकथा' में लोककथाओं, लोकगीतों, लोकपरंपराओं, प्रथाओं एवं लोकभाषा के प्रयोगों से परानपुर की संस्कृति का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसकी भाषा आँचलिक है। इसमें ख़डीबोली और मैथिली भाषाओं के अनेक मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया गया है। परानपुर के लोगों के लोकगीत और लोकनृत्य भी इस उपन्यास में है। इसमें लोकगीतात्मक शैली का उपयुक्त प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार 'परती परिकथा' में रेणु कथानक के स्तर पर परानपुर को तत्कालीन भारतीय समाज के एक मिनियेचर के रूप में कल्पित करते हुए वास्तविकता का रूप गढ़ते हैं। यह एक ऐसा उपन्यास है जो एक अंचल की अभिव्यक्ति के माध्यम से संपूर्ण समाज, सभ्यता तथा संस्कृति के बारे में सोचने केलिए मज़बूर करता है। परानपुर के गंवई अंचल के माध्यम से उसकी आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक दृष्टि को उन्मेषित किया गया है।

सन्दर्भ

1. डॉ.रामपत यादव, उपन्यास का आँचलिक वातायन, पृ.34
2. डॉ.देवेश ठाकुरमैला आँचल की रचना-प्रक्रिया, पृ.15
3. फणीश्वरनाथ रेणु, परती परिकथा, पृ.सं.88, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

सहायकआचार्या,
हिंदी विभाग,
एस.एन.जी.एस.कॉलेज, पट्टाम्पि,
पालक्काट-679306.

सही उत्तर चुनें

(पृ.सं.31 के आगे)

13. 'मैला आंचल' में चित्रित अंचल का नाम क्या है?

अ) औराही हिंगना　　आ)मेरीगंज
इ)नबीनगर　　ई) परमानपुर

14. लातिकाजी कौन हैं?

अ) रेणु की माँ　　आ) रेणु की बहन
इ)रेणु की दादी　　ई)रेणु की पत्नी

15. हिन्दी साहित्य में अपने उपन्यास को 'आंचलिक उपन्यास' घोषित करके किसने प्रस्तुत किया?

अ)नागार्जुन　　आ)रेणु
इ)शिवप्रसाद सिंह　　ई)राही मासूम रज्जा

(शेष पृ.सं. 38)

रेणु की कहानियों में देशीयता

♦ डॉ.गीताकुमारी.जी

प्राचीनता और नवीनता की टकराहट भारत के सभी समाजों और भारतीय संस्कृतियों में दिखाई पड़ती है। मूल भारतीय संस्कृति विभिन्नता में एकता को धारण करके निरन्तर बहती रहती है। वह शुद्ध रूप में भारतीय इतिहास के अतीत से बहती दिखाई पड़ती है, किन्तु भारत में अंग्रेज़ों के अगमन से उसमें पाश्चात्य संस्कृति का भी समावेश होने पर वह थोड़ी बहुत परिवर्तित दिखाई पड़ती है। इसलिए हमारे समकालीन कथाकार प्राचीनता और आधुनिकता की टकराहट की गड़बड़ी में पड़ जाते हैं कि इनमें किसे स्वीकृति दी जाय? इनमें कुछ रचनाकार शुद्ध देशी परम्परा को स्थाई रूप से बनाये रखने में सफल होते हैं तो और कुछ रचनाकार शुद्ध देशी परम्परा से बचे रखने में ध्यान देते हैं और आधुनिकता की ताज़ी बातों को अपनाते हैं। तीसरे प्रकार के रचनाकार प्राचीनता और आधुनिकता के बीच की कड़ी बनते हैं। ये प्राचीनता को त्याग नहीं देते तथा आधुनिकता को पूर्ण रूप से स्वीकार करते भी नहीं हैं।

वर्तमान भारतीय कथा साहित्य का अध्ययन करने पर मालूम होता है कि अधिकतर वह नगरीय होता जा रहा है। अर्थात् आधुनिक कृत्रिम शहरी जीवन ही उसकी रचना का विषय बन जाता है। किन्तु हिन्दी कहानी साहित्य के इतिहास में 'नयी कहानी' के अन्तर्गत आनेवाली 'आँचलिक कहानियों' में देशीयता का पुट ज़रूर मिलता है।

आधुनिक साहित्य सामाजिकता या सार्वजनिकता से दूर रहकर पारिवारिक या वैयक्तिक होता जा रहा है। साहित्य सामाजिक होने से 'देशीय' निकलता है और उसका रचनाकार देशप्रेमी प्रमाणित होता हैं। साहित्य में 'देशीयता' अतीत की प्रामाणिकता को लेकर है और साहित्यकार का देश प्रेम अतीत के प्रति उसका प्रेम प्रकट करता है। साहित्य के देशीय होने से वह जिस समाज या संस्कृति से उद्भूत होता है, उसकी जड़ें खोद निकाली जाती हैं। परन्तु वह ताज़ी बातों को छोड़ता भी नहीं। 'देशीवाद'[1] पूर्ण रूप से प्राचीनता को स्वीकार करना नहीं है, अपितु इन दोनों - प्राचीनता और नवीनता- का विचार-विश्लेषण करके उन बातों को स्वीकार करना है जो देश की अपनी स्वीकृति को रूपायित करने में सहायक सिद्ध होता है। स्पष्ट है कि 'देशी साहित्य' अपनी विशिष्टता और व्यक्तित्व को प्रामाणित करता है।

'देशीयता' की धारणा परम्परा को गहरी व्यापक जानकारी से संबद्ध रखती है। अंग्रेज़ी शब्द 'नेटीव' [2] भारतीय शब्द 'देशी' से समता रखता है। तब 'नेटिविसम' का अनुवाद होता है 'देशीवाद'। सन् 1983 में आधुनिक 'मराठी' और 'कन्नड़' साहित्य में 'देशीवाद' पर एक सम्मेलन संगली [3] के श्रीमती कस्तूरबा बालचन्द कॉलेज ऑफ आर्ट्स आण्ड़ साइन्स [4] में चलाया गया था। इस सम्मेलन में 'मराठी' और 'कन्नड़' साहित्य के श्रेष्ठ सृजनात्मक रचनाकारों और आलोचकों ने भाग लिया

था। इसमें विशेष रूप से स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में 'देशीवाद' के समावेश पर विचार किया गया था।

यद्यपि इस सम्मेलन में पैने ढंग से 'देशीवाद' की परिभाषा नहीं दी गयी या देशीवाद की सीमा निर्धारित नहीं की गयी, तो भी वर्तमान साहित्य में देशीवाद के प्रति आकर्षण साभिप्राय या सार्थक स्पष्ट हुआ। सभी भाषाओं के साहित्य का मूल स्रोत 'देशीयता' ही रह जाता है।

'देश' शब्द का अर्थ है भूमि का वह भाग जिसका कोई विशिष्ट नाम हो, जिसके अन्तर्गत अनेक नगर, ग्राम आदि हों और जिसमें अधिकांश एक भाषा बोलनेवाले लोग रहते हों। भारत ऐसा एक देश है, जहाँ अनेक नगर और गाँव हैं, जिसमें विभिन्न भाषा-भाषी लोग रहते हैं, जिसकी एक राष्ट्रभाषा भी है जो वहाँ सर्वव्यापक भाषा है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के व्रज, अवधी, कनौजी, बुन्देली, बाँगरू आदि भाषा-भेद होते हुए भी इन सब के मूल में हिन्दी भाषा रही है। विभिन्नता में एकता भारतीय संस्कृति की निजी विशेषता है, और इसलिए विभिन्न भाषा-भेदों के अवश्य होते हुए भी हिन्दी भाषा का साहित्यिक रूप भारत में सब कहीं एक ही है।

भारत देश की निजी संस्कृति अवश्य है। किन्तु यहाँ अंग्रेज़ों के आगमन के साथ पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय संस्कृति से मिलन हुआ और पाश्चात्य संस्कृति से प्रेरणा पाकर भारत की मूलभूत संस्कृति के प्रति आकर्षित भारतीयों के भारत देश में आज अनेकों पाश्चात्य तत्व रहते हुए भी, पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण करके भारतीय अपने को परिष्कृत मानते हुए भी यहाँ ऐसे साहित्यकार आज भी विद्यमान हैं जो 'देशीयता' यानी 'भारतीयता' पर बल देते हैं। देशीवादियों में इनकी गणना की जा सकती है। ये देशीवादी आधुनिकता का पूर्ण रूप से बहिष्कार नहीं करते। भारतीय संस्कृति को सफल रूप से रूपायित करने में सहायक तत्वों को वे उससे ग्रहण करते भी हैं।

'फणीश्वरनाथ रेणु' हिन्दी के ऐसे कथाकार हैं जिनका देशीवादियों की पंक्ति में गणना की जा सकती है। अन्य अधिकतर समकालीन कथाकार अपने नगर बोध के कारण अकेलापन, अजनबीपन, संत्रास, कुण्ठा, यथार्थ बोध, व्यक्ति की संक्रान्त मनःस्थिति, पति - पत्नी का दांपत्य विघटन आदि आधुनिक साहित्यिक प्रवृत्तियों पर बल देते हैं, तो रेणुजी ऐसे ग्रामीण कथाकार हैं जो अपने कथा साहित्य में ग्राम कथाओं का सृजन करते हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि ग्रामीण संस्कृति, जो कि भारत की मूलभूत संस्कृति है, इसका महत्व का दर्शन कराने केलिए रेणुजी ने नगरी जीवन की रचनायें भी की हैं। गाँव के बदलते परिदृश्य को चित्रित करने केलिए भी वे अपनी कुछ कहानियों में उपयुक्त आधुनिक साहित्यिक प्रवृत्तियों का सहारा अवश्य लेते हैं। अतः रेणुजी की कहानियों में उनका निजीपन स्पष्ट प्रतिबिंबित है और कहानियाँ देशीय हो जाती हैं। अर्थात् रेणुजी अपनी कहानियों में प्राचीनता को स्थान देते हैं और आधुनिकता को छोड़ भी नहीं देते। गाँव के बदलते परिदृश्य का चित्रण करते वक्त वे ऐसे कुछ ग्रामीण कथापात्रों का चित्रण करते हैं जो शहरी संस्कृति के प्रति आकर्षित होते हैं और अपने गाँवों में भी ऐसा परिवर्तन देखना चाहते हैं। गाँव से न टूटने और शहर से न अलग होने की एक स्थिति उनकी ऐसी रचनाओं में दिखाई पड़ते हैं। शहर से शिक्षा प्राप्त ग्रामीण युवकों का

मन फिर से गाँव में नहीं लगता। छुट्टी के दिनों में शहर से अपने गाँव आने से रेणुजी के 'विष्णु' नामक युवा पात्र का मन गाँव में नहीं लगता। वह अपने घर और गाँव में शहर जैसा परिवर्तन देखना चाहता है। वह शहर में जाकर परिष्कृत हो गया तो उसकी बेचारी माँ सोचती हैं-"एक दिन कहा रहा था बिशनू, कि दोनों को संग बैठाकर फोटो लूँगा। माँ-बाप से भी हँसी-खिलवाड़ करते हैं, पढ़वा लड़के।" [5]

हिन्दी के कथा साहित्य में रेणुजी का वास्तविक पदार्पण तब हुआ जब कि भारत के अधिकांश जन - जीवन में कृत्रिमता का बोलचाल दिखाई पड़ने लगा था। इसकी संभावना अधिक थी क्योंकि उन्होंने बड़े या विवेकशील होने पर अपने जीवन को अधिकांश शहर में बिताया था। शहरी वातावरण में रहकर ग्रामीण भूमिका में उतरकर, बिहार के ग्रामीण जीवन से अनुभव प्राप्तकर, उस जीवन से घुलमिलकर उन्होंने रचनायें की हैं। यह कारण था कि वे हिन्दी कथा साहित्य में महान हो गए। प्रेमचन्दजी की ग्रामीण कहानियों के बाद जो हिन्दी कथा साहित्य आधुनिकता बोधवाली वैयक्तिक कहानियों को महत्व दे रहा था, उस हिन्दी कहानी साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु आँचलिक यथार्थ को लेकर लिखने लगे। प्रेमचन्दजी की ग्रामीण कहानियों का यथार्थ सर्वसामान्य और सार्वजनिक है तो रेणुजी अंचल विशेष के यथार्थ की अतल गहराई में चले जाते हैं। रेणुजी की कहानियों में ग्राम विशेष अपने सारे सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के साथ प्रकट होता है। स्वयं एक पिछड़े गाँव 'औराही हिंगना' में जन्म लेने के कारण तथा अपने गाँव के प्रत्येक मनुष्य को देखने - परखने की विशेष क्षमता रखने के कारण उन्होंने समझ लिया है कि ग्रामीण ही सच्चे मानव हैं। भारतीयता से अलग होते रहनेवले, विदेशी संस्कृति से आकर्षित होनेवाले, अपने को शहरी कहने में अभिमान रखनेवाले सचमुच भारतीय संस्कृति का गला घोंटनेवाले व्यक्ति ही शहरों में अधिकतर रहते हैं। भारत देश की जो पारिवारिक संस्कृति है, उनका मूल स्रोत ग्रामीण संस्कृति है। रेणुजी ने गाँव का यह महत्व समझ लिया और गाँव की कथा-रचना की। उनकी रचनाओं में जहाँ शहरी जीवन का समावेश हुआ है वहाँ भी ऐसे पात्र दिखाई पड़ते हैं जो मूल रूप से ग्रामीण हैं, या गाँव से संबन्ध रखनेवाले हैं।

रेणुजी के कहानी संग्रह हैं 'ठुमरी', आदिम रात्रि का महक', अग्निखोर' आदि। उनकी कुछ कहानियों को मिलकर राजेन्द्र यादव ने 'फणीश्वरनाथ रेणुः श्रेष्ठ कहानियाँ' नाम से प्रकाशित किया। जैसे कि ऊपर कहा गया है कि अपनी कहानियों द्वारा रेणुजी ने प्रेमचन्द जी की यथार्थवादी परम्परा को आगे बढ़ाया है और गाँव की समस्याओं पर पैठ जाने का प्रयास किया है। रेणुजी प्रेमचन्दजी से एक कदम आगे हैं कि जहाँ प्रेमचन्दजी ने ग्रामीण जीवन के प्रति सहानुभूति दिखाई है वहाँ रेणुजी ने उसके साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया है। यह इसलिए कि रेणुजी स्वयं ग्रामीण जीवन के अनुभवी कथाकार हैं। अतः ग्रामीण संस्कृति को रेणुजी ने आंचलिक कथा साहित्य में उभारा है।

रेणुजी की कहानियों में 'देशीयता' पर विचार करते वक्त 'आधुनिक' शब्द पर भी विचार करना समीचीन होगा। पश्चिम के अनुसार 'आधुनिकता' का अर्थ है 'प्रगतिशील होना' या 'विकास पाना'। अर्थात् 'ताज़ी बातें अपनाना'। भारत में 'आधुनिकता' नामक कोई चीज़ है तो वह पाश्चात्य संस्कृति की देन है।

पश्चिमी देशों में जो आधुनिकता है,उसका अपना इतिहास है, जो पुराने आचार-विचार में नयी-नयी परिस्थितियों के प्रभाव से उद्भूत और विकसित है। परन्तु भारत केलिए आधुनिकता एक रेड़ीमेड़ चीज़ है, जो विदेश से आयी है। इस आधुनिकता के पीछे भारतीय साहित्यकार पागल होते हैं, जो भारत की निजी संस्कृति से अपने को अलग रखती है। किन्तु देशी साहित्य भारतीय मिट्ठी को अधिक महत्व देता है। कहने का मतलब यह है कि 'देशी साहित्यकार' या 'देशीयतावादी-साहित्यकार' अपने देश के प्रति ईमानदार रहते हैं। रेणुजी इनमें से हैं, जो भारतीय ग्रामीण संस्कृति का जीता-जागता चित्रण करते हैं।

रेणुजी का पहला कहानी संग्रह 'ठुमरी' पूर्णतया ग्रामीण परिवेश को अपनाता है। इस संग्रह की कहानियों में गाँव के परिवर्तनशील समसामयिक जीवन का स्वर मुखरित है। 'आदिम रात्रि की महक' (1967) संग्रह की कहानियों में गाँव के विघटन के स्वर मुखरित हैं। अथात् इनमें ग्रामीणों में आधुनिक नगरबोध का उदय स्पष्ट होता है। इस नगरबोध के कारण रेणुजी के किसनलाल', 'हेरबोलवा', 'फात्तिमा', 'गनपत' आदि पात्र जीवन्त ग्रामीण चरित्र होकर भी पूर्ववर्ती गाँव केलिए परिचित चरित्र नहीं हैं। 'अग्निखोर' (1973) संग्रह में आकर रेणुजी के यथार्थवादी कहानीकार अनुभव करते हैं कि शहरी सभ्यता गाँव की स्नेह - सहानुभूति को लीले जा रही है। उनका दुःखी मन जान लेता है कि शहरी सभ्यता ग्रामीणों को अस्सहाय और लाचार बना देती है।

रेणुजी की कहानियों के क्रमिक विकास पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि रेणुजी प्रतिदिन नष्ट होती ग्रामीण संस्कृति के सच्चे अध्येता हैं। रेणुजी की रुचि ग्रामीण जीवन और ग्रामीण संस्कृति पर अधिक है। अतः आधुनिक सभ्यता के पीछे पड़कर ग्रामीणता की जो स्वाभाविकता नष्ट होती जा रही है, उस पर रेणुजी के मन का दुःखी होना स्वाभाविक हैं।

रेणुजी स्वयं ग्रामीण कथाकार हैं, फिर भी उनकी कुछ कहानियाँ नगरीय हैं। लेकिन इन कहानियों में भी वे 'नेटिविस्ट'[6] या देशीवादी हैं। क्योंकि इनमें वे आधुनिक सभ्यता की सारी विकृतियों को खोलकर खोई हुई आधुनिक सभ्यता यानी मूल भारतीय संस्कृति को टटोलने की चेष्टा करते हैं। रेणुजी की कथा रचनाओं का कथ्यगत विश्लेषण करने से देखा जाता है कि वे देवीवादी कथाकार है।

संदर्भ

1.Nativism

2.Native

3.Sangali

4.Smt. Kasturba College of Arts and Science.

5.'तीर्थोदक' कहानी, फणीश्वरनाथ रेणु, ठुमरी संग्रह।

6.Nativist

♦ सदस्या

अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी

तिरुवन्तपुरम, केरल राज्य।

सही उत्तर

(पृ.सं.34 के आगे)

1.अ	2.इ	3.ई	4.आ	5.ई
6.इ	7.आ	8.ई	9.आ	10.आ
11. ई	12.इ	13.आ	14.ई	15.आ

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में लोक जीवन

♦ डॉ.एलिसबत जॉर्ज

स्वातंत्र्योत्तर युग के सर्वोत्कृष्ट कथाकार श्री फणीश्वरनाथ रेणु ग्रामांचल व लोक संस्कृति के कथाकार माने जाते हैं। तत्कालीन समाज, लोकजीवन और परिवेश की जीती-जागती तस्वीरें उनकी कहानियों में मिलती हैं। अपने अंचल के प्रति आत्मीयता, अनुभूति की प्रामाणिकता, भाषागत मौलिकता, संवेदनापूर्ण जीवन-दृष्टि आदि उनकी रचना-शैली की विशेषताएँ हैं।

बिहार के पूर्णिया जिले के औराही हिंगना नामक गाँव में 4 मार्च 1921 को रेणु का जन्म हुआ था। अपने अंचल के प्रति रेणु जी को अपार लगाव था। उनका गाँव मिथिलांचल में आता है जिसकी सीमा नेपाल, बंगला को छूती है। इन तीनों क्षेत्रों की संस्कृतियों का गहरा प्रभाव रेणु जी के जीवन तथा लेखन पर पड़ा है। देश की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं के प्रति वे जागरूक थे। भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन और नेपाली क्रांति में उनकी सक्रिय भागीदारी रही थी। हिन्दी साहित्य जगत में उनका पदार्पण सन् 1945 में 'विश्वामित्र' पत्रिका में प्रकाशित 'वटबाबा' कहानी से हुआ। सन् 1954 में प्रकाशित पहला उपन्यास 'मैला आँचल' ने उन्हें अजस्र कीर्ति प्रदान की। इसमें उन्होंने पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव को केन्द्र में रखकर वहाँ की मैली ज़िन्दगी के समग्र पक्षों का मनोरम चित्र प्रस्तुत किया। उपन्यास के परंपरागत ढाँचे को छोड़कर सर्वथा नवीन ढाँचे में उन्होंने आंचलिक भावधारा को प्रवाहित किया। उनके अन्य उपन्यास हैं - 'परती परिकथा', 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'कितने चौराहे' और 'पलटू बाबू रोड़'। कहानी संग्रह में 'ठुमरी', 'आदिम रात्रि की महक', 'अग्निखोर', 'एक श्रावणी दोपहरी की धूप' आदि हैं। कथा साहित्य के अलावा रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण जैसी गद्य विधाओं में भी उन्होंने सफलतापूर्वक तूलिका चलाई है।

ग्रामीण परिवेश और लोक जीवन के प्रति रेणु को अपार लगाव था। संवेदनशील ग्रामीण जनता की दुःख दर्द भरी ज़िन्दगी को प्रकृति के धरातल पर उन्होंने अभिव्यक्त किया। लोक जीवन के अन्तर्संघर्षों को, उसके सुंदर-असुंदर पक्षों को बड़ी तन्मयता के साथ उन्होंने उद्घाटित किया। ग्राम जीवन का यथार्थ, वहाँ की बदलती परिस्थिति, व्यवस्था व अव्यवस्था, संतोष व अकुलाहट - इन सबके बीच सार्थक जीवन-संदर्भों की तलाश उनकी कहानियों में मिलती है। गाँव की मिट्ठी, खेत-खलिहान, नदी-नाले, पशु-पक्षी, पर्व, मेले, त्योहार, संगीत-नृत्य, कला आदि लोक जीवन से जुड़े समस्त पक्षों को कुशल चितेरे के समान रेणु जी ने अपनी रचनाओं में उकेर दिया।

लोक जीवन की अनुपम भाव भंगिमा का जीवंत एवं सूक्ष्म अंकन प्रस्तुत करके रेणु जी ने भारतीय गाँवों की सांस्कृतिक विरासत का परिचय दिया। डॉ. बच्चन सिंह के शब्दों में "वे आदिम रस गन्धों के कथाकार हैं। गाँव की धूल-माटी, आँगन की धूप, बैलों की घण्टियाँ,

धान की झुकी बालियाँ, गमकता चावल, मेला-ठेला, हँसी-ठिठोली आदि के वर्णन में गाँव ही नहीं, पूरा अंचल उभर आता है।" रेणु की कहानियाँ जन जीवन के आचार-विचार, रीति-रिवाज़, भाषा, उद्योग-व्यवसाय, धर्म विश्वास, मनोरंजन आदि का जीवंत दस्तावेज़ हैं।

रेणु का पहला कहानी संग्रह है 'ठुमरी' (1959)। इसमें संकलित कहानियाँ लोक जीवन के सुंदर, सहज संवेदनशील चित्र उपस्थित करती हैं। प्रकृति और मानव का घुलामिला चित्र मानवीय अनुभूतियों को जगाता है। 'लालपान की बेगम', 'ठेस', 'रसप्रिया', 'पंचलाइट' जैसी कहानियों में लोकजीवन साकार हो उठता है। इस संग्रह में 'ठुमरी' नामक कोई कहानी नहीं है। लेकिन सभी कहानियाँ ठुमरी या भाव संगीत की तरह रस, रंग और भाव की हिल्लोरें उठाती हैं। माटी की सोंधी महक से हमें अभिभूत कर देती हैं। इनमें पीड़ा व अवसाद तथा उल्लास व उमंग का मिला-जुला स्वर गूंज उठता है।

गाँवों की ज़िन्दगी कृषि केन्द्रित होती है। कृषि से जुड़ी सारी गतिविधयों में सामाजिक भागीदारी होती है। सामाजिक-पारिवारिक जीवन में रिश्तों - नातों का बड़ा एहमियत होता है। सुख और दुःख परिवार तक सीमित न रहकर समाज में बाँटा जाता है। 'समाज' परिवार का ही विस्तृत रूप होता है। छोटे - छोटे झगड़े, ईर्ष्या, द्वेष भी लोक जीवन का हिस्सा है। लेकिन आपसी रिश्ता कभी शिथिल नहीं हो जाता। "लाल पान की बेगम' कहानी में रेणु जी ने सामाजिक रिश्तों की दृढ़ता एवं ऊष्मलता को रेखांकित किया है। बिरजू की माँ बलरामपुर में नाच देखने जाने की अभिलाषा करती है। बिरजू के बाप के आने में देर लग जाता है तो वह मन ही मन झुंझलाती है। बच्चों और पड़ोसिनों पर अपना क्रोध निकालती है। बैलगाड़ी लेकर बिरजू के बाप के आ जाने पर पूरा दृश्य बदल जाता है। पड़ोसिनों को उल्टा जवाब देनेवाली बिरजू की माँ में तरलता और उदारता का संचार स्वयमेव होता है। वह पड़ोसिनों को भी साथ लेकर नाच देखने जाती है। विरोध एवं वैषम्य के होते हुए भी लोक जीवन में प्यार, दया, सहृदयता सहानुभूति जैसे मूल्य विद्यमान है। पूरी कहानी में यह बात स्पष्ट रूप से व्यंजित है कि बिरजू की माँ और उसके परिवार के प्रति गाँववालों के मन में ईर्ष्या है। क्योंकि इनकी अपनी ज़मीन है, अपनी खेती है। गाँव के अन्य किसानों की स्थिति इनकी तुलना में अच्छी नहीं। लेकिन यह अंतर कैसे आ गया? स्वतंत्रता के बाद के यथार्थ की ओर यहाँ सूचनाएँ दी गयी है। स्वतंत्रता के बाद जब ज़मींदारी प्रथा का अंत हुआ और भूमि वितरण योजनाएँ ज़ारी हुई, तब जिसने भी संघर्ष किया उसका जीवन खुशहाल हुआ। भू सर्वे द्वारा किसानों को ज़मीन दिलाने का समय आया तो बिरजू के बाप ने अपनी कुर्माटोली के एक-एक आदमी को समझाया था कि "ज़िन्दगी भर मज़दूरी करते रह जाओगे। सर्वे का समय हो रहा है, लाठी कड़ी करो तो दो-चार बीधे ज़मीन हासिल कर सकते हो।" लेकिन ज़मीन्दार के खिलाफ़ किसी ने मुँह नहीं खोला था। बिरजू के बाप चार बीधे ज़मीन हासिल कर सका था। वहीं अब अच्छा फसल हुआ जो गाँववालों के दिल में जलन पैदा करता है। गरीब बज़मीन भोले किसानों के जीवन का वह यथार्थ है। ज़मींदारों के दमन और शोषण के खिलाफ़ लड़ने का साहस उनमें नहीं। बिरजू के पिता भी सीधा सादा सरल आदमी है। उनमें हिम्मत बढ़ाने में

पत्नी की व्यवहार कुशलता का हाथ रहा था। जन साधारण के धार्मिक दृष्टिकोण भी कहानी में उजागर होते हैं। धार्मिक रीति-रिवाज़ों के प्रति आस्था का भाव बिरजू की माँ के चरित्र में देखा जा सकता है। अपनी अभिलाषा पूर्ण न होने की आशंका में वह भोले बाबा और महावीर से मनौतियाँ करती हैं। फिर नवान्न का पहला धान जूठा करने पर बिरजू को वह डाँटती है। लोक जीवन के केन्द्र में इसप्रकार की धार्मिक मनोवृत्तियों को देख सकते हैं।

'ठेस' कहानी कलाकार के स्वाभिमान पर केन्द्रित कहानी है। कलाकार दूसरों से सम्मान प्राप्त करने का आकांक्षी होता है। उसे जब सम्मान की जगह तिरस्कार और अपमान प्राप्त होता है तो उसके संवेदनशील हृदय को ठेस पहुँचता है। सिरचन उच्च कोटि का कारीगर है, जिसका गाँव में बड़ा सम्मान था। "लेकिन अब गाँव में ऐसे कार्मों को बेकाम का काम समझते हैं" (ठेस-रेणु) लोक जीवन में कला और कलाकार को बड़ी इज्जत मिलती थी। इस अर्थ प्रधान युग में लोक कला और कलाकार बेकार माने जाते हैं। जीवन गतिशील है। पुरानी रीति-रिवाज़, आचार-विचार, रहन-सहन में बदलाव आना स्वाभाविक है। गाँव भी इससे अछूता नहीं रहता। सामाजिक बदलाव के कारण परंपरागत व्यवसाय का जो तिरस्कार हुआ है उसको मार्मिक ढंग से रेणु ने प्रस्तुत किया है। रसप्रिया' कहानी में पंचकौड़ी मृदंगिया की उँगली टेढ़ी हो जाने से उसे भीख माँगकर जीवन-यापन करना पड़ता है। विद्यापति नाचवाले कलाकार का बीस साल पहले तक समाज में बड़ा मान सम्मान था "शादी-ब्याह, यज्ञ-उपनैन, मुण्ड़न-छेदन आदि शुभ कार्यों में विदपतिया मण्डली की बुलाहट होती थी। धीरे-धीरे इलाके से विद्यापति नाच ही उठ गया। अब तो कोई विद्यापति की चर्चा भी नहीं करते।" (रसप्रिया -रेणु)। परंपरागत व्यवसाय की तरह आज लोक कला भी समाज से छूटती जा रही है।

लोक जीवन में जातिगत भेद भाव प्रबल होता है। एक जाति के अन्तर्गत कई टोलियों में विभाजित जन समुदाय के बीच परस्पर स्पर्धा सहज स्वाभाविक है। 'पंचलाइट' कहानी में जातीय प्रतिस्पर्धा का चित्रण रेणुजी ने प्रस्तुत किया है।

लोकगीत, लोकनृत्य, त्योहार, मेले आदि लोकजीवन के प्राण तत्व होते हैं जो थके-हारे मानस में नई चेतना भर देती है। रेणु की कहानियों में लोक नाच, विद्यापति नाच, लोक गीत, फिल्म गीत आदि का प्रचुर प्रयोग हुआ है जो पात्रों की मनस्थितियों और भावानुभूतियों को उभारने में सहायक रहा है। स्थानीय भाषा का प्रयोग करके रेणु जी ने ग्रामीण परिवेश को मूर्त करने का प्रयास किया है। लोकजीवन का वास्तविक चित्र रेणुजी की कहानियों में खींचा गया है। रेणुजी ने अपनी कहानियों में बिहार के गाँवों का जन जीवन चित्रित किया है।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ.नगेन्द्र, पृ.सं. 688
2. ठुमरी - फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

♦ असिस्टन्ट प्रोफेसर
सरकारी वनिता कॉलेज
तिरुवनन्तपुरम।

ग्रामांचल का कथाकार श्री फणीश्वरनाथ रेणु- 'पंचलाइट' के संदर्भ में

♦ डॉ. धन्या एल

देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद जिस तरह शासकों का ध्यान गाँव की ओर गया उसी तरह कुछ कहानी लेखकों ने भी गाँव को विषय वस्तु के रूप में चुना। ग्रामांचल की तली में घुसकर उसके सभी अंगों को समग्रता में चित्रित करनेवाले चर्चित और अद्वितीय कथाकार हैं - श्री फणीश्वरनाथ रेणु। बिहार के पूर्णिया जिले के 'औराही हिंगना' नामक गाँव के एक किसान परिवार में जन्मे रेणुजी ने ग्राम्य जीवन को अपना साहित्य का आधार बना लिया। 'नयी कहानी आंदोलन' के अंतर्गत आँचलिकता का विशेषण लिए हुए सामने आयी रेणुजी की कहानियाँ। उनकी कहानियों ने अपनी विशिष्टता की वजह से लोगों को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट किया। उनके साहित्य में ग्राम्य समाज एवं राजनीति केंद्र में है। उपन्यास, कहानी, कविता, व्यंग्य, रिपोर्ताज, संस्मरण और रेखाचित्र में लेखनी चलाकर उन्होंने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। रेणुजी का जीवन और साहित्य विविधता से भरा हुआ है। रेणु जी ने भोगे हुए यथार्थ को ही अपने साहित्य में व्यक्त किया है। उन्होंने एक अलग विशिष्ट विचारधारा को जन्म दिया।

विविधता से भरा ग्रामांचलों का गहरा अनुभव श्री फणीश्वर नाथ रेणु में है, जिसके कारण उनके ग्राम एवं ग्रामीण जीवन के चित्रण में स्वाभाविकता है। आधुनिकता के कारण भारतीय संस्कृति को जो नुकसान हआ है, उसी के कारण रेणुजी का मन असन्तुष्ट है। इन सब का प्रकट रूप उनकी कहानियों में व्याप्त है। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ सन् 1940 के आसपास कविताओं से किया था। रेणु जी ने ग्रामीण जीवन एवं परिस्थितियों को लेकर साहिय-रचना की। ग्रामीण जीवन के संघर्ष, संस्कार और जातीय अस्मिता के बारे में डॉ शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं- "क्षेत्र का अंचल (विशेष) उस भौगोलिक भूखंड को कहते हैं जो सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट ऐसी इकाई है, जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएँ, उत्सवादि, आदर्श, आस्थाएं तथा मनोवैज्ञानिक मान्यताएँ परस्पर समाज और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्न हों कि उसके आधार पर एक क्षेत्र का अंचल विशेष, किसी दूसरे क्षेत्र से एकदम अलग प्रतीत हो।"[1]

रेणु ने अपनी कहानी में बदलते हुए गाँव को, उनके बनते-बिगड़ते मूल्यों को पूरी समग्रता और जटिलता में पूरी तन्मयता के साथ चित्रित किया है। ग्रामीण जीवन, संस्कृति एवं समस्याओं का जीता-जागता चित्र उनकी कहानियों में मिलता है, ऐसी कहानियाँ पढ़ते वक्त पाठकों के दिल में ग्रामीण लोगों के प्रति स्नेह एवं उनके भोलेपन पर प्यार उमड़ आता है। रेणु जी के कथा साहित्य के संदर्भ में 'हिन्दी ग्राम्य कहानियों के रचनात्मक स्वर' नामक पुस्तक में यों कहा है कि रेणु के अधिकांश

कथा साहिय में, चाहे उसके केंद्र में गाँव हो या शहर, शोषित पीड़ित सामान्य जन, विशेष रूप से नारी के जीवन की त्रासद स्थितियों और अनुभवों की अभिव्यक्ति है और परोपजीवी वर्गों के जीवन के पाखंड, खोखलेपन और अमानवीयता का चित्रण है।[2]

रेणु जी विश्व के उन थोड़े सहित्यकारों में एक है, जिनके लिए लिखना और जीना को एक ही मतलब था। रेणुजी ने अपनी कहानियों के मुख्य विषय के रूप में बिहार के गाँवों के जन जीवन तथा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के भारतीय ग्रामीण जन जीवन को लिया है। ग्रामीण जीवन, संस्कृति और सौंदर्य का चित्रण करना मात्र उन्होंने अपना दायित्व नहीं समझा, बल्कि ग्रामीण जनता के यथार्थ जीवन का यथातथ्य चित्रण भी उनका लक्ष्य था। मैनेजर पाण्डेय का कहना है उत्तर भारत के गाँव और किसान-जीवन का सम्पूर्ण चित्र देखने केलिए प्रेमचंद के साथ रेणु की कहानियों को भी पढ़ना ज़रूरी है।[3]

'ठुमरी' रेणु का पहला कहानी संग्रह है, जिसे सन् 1959 में राजकमल प्रकाशन ने प्रकाशित किया। प्रस्तुत संग्रह में नौ कहानियाँ संकलित हैं रसप्रिया, पंचलाइट, ठेस, तीर्थोदक, नित्यलीला, सिरपंचमी का संगुन, तीसरी कसम, लालपान की बेगम और तीन बिंदियाँ। 'ठुमरी' नामक इस कथा संग्रह में विविध प्रकार की कहानियाँ हैं और 'ठुमरी' शीर्षक से कोई कहानी न होते हुए भी लेखक ने इसका नाम 'ठुमरी' नामक गायन विधा के नाम पर रखा है, जिसमें मिश्रित भावों और रागों का निरूपण होता है, क्योंकि यह संग्रह विविध प्रकार और भाववाली कहानियों का संग्रह है। इस संग्रह की कहानियों में समसामयिक ग्रामीण जीवन का चित्रण हुआ है जो परिवर्तनशील है। रेणु जी ने इस कहानी संग्रह को ठुमरीधर्मा कहा है। दीनानाथ शास्त्री ने रेणु की कहानियों की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- मानवीय संवेदनशीलता, मानवीय सबंधों का उद्घाटन और नए मूल्यों का अन्वेषण ही उनकी कहानियों की विशेषता है।[4]

रेणु की कहानियाँ हिन्दी की यथार्थवादी कथा-परंपरा की एक शक्तिशाली कड़ी हैं। उनकी ग्राम्य जीवन पर आधारित कहानी है 'पंचलाइट'। गाँवों में पनपती राजनीति और ग्रामीणों की मनोदशा का कच्चा चिट्ठा 'पंचलाइट' में प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत कहानी 'ठुमरी' कहानी संग्रह की है। यह कहानी आँचलिक कहानियों की श्रेणी में एक प्रमुख कहानी है। रेणु जी से इस कहानी की रचना सन् 1950 से 1960 के मध्य की गयी थी। प्रस्तुत कहानी की मूल घटना सिर्फ एक 'पेट्रोमेक्स' अर्थात् 'पंचलाइट' खरीदने और उसे जलाने भर की है। हमारा देश आज़ाद हुआ और आज़ादी के बाद आम जनता पर अपना प्रभाव जमाने की फिराक में कुछ लोगों ने क्या-क्या नहीं किया इस देश में। इसी प्रकार पंचलाइट लाने और अपना प्रभाव फैलानेवालों के दिमाग में अचानक ही एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि इस पंचलाइट को आखिर जलाएगा कौन?

'पंचलाइट' रेणुजी की आंचलिक कहानी है। ग्रामीण अंचलों से रेणुजी का निकट परिचय है। बिहार के अंचलों का सजीव चित्र उनकी कथाओं का अलंकार है। पंचलाइट भी बिहार के परिवेश की कहानी है। रेणुजी ने ग्रामीण अंचल का वास्तविक चित्र खींचा है। 'पंचलाइट' कहानी का कथानक इस प्रकार है- महतो टोली में

अशिक्षित लोग रहते हैं। उन्होंने रामनवमी के मेले से पेट्रोमेक्स खरीदा, जिसे वे 'पंचलाइट' कहते हैं। परंतु इसे जलाने की विधि वहाँ कोई नहीं जानता। दूसरी टोलीवाले इस बात का मज़ाक करते हैं। महतो टोली का एक व्यक्ति पंचलाइट जलाना जानता है और वह है 'गोधन', किन्तु वह जाति से बहिष्कृत है। वह मुनरी नामक लड़की का प्रेमी है। उसकी ओर प्रेम की दृष्टि रखने के कारण ही पंच उसे बिरादरी से बहिष्कृत कर देते हैं। मुनरी बड़ी चतुराई से इस बात की चर्चा करती है कि गोधन पंचलाइट जलाना जानता है। इस समय जाति की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, अतः गोधन को पंचायत में बुलाया जाता है। पंच गोधन को पुनः जाति में ले लेते हैं। गोधन पंचलाइट को स्पिरिट के अभाव में गरी के तेल से ही जला देता है। अब न केवल गोधन पर लगे सारे प्रतिबंध हट जाते हैं, वरन् उसे मनोनुकूल आचरण की भी छूट मिल जाती है। मुनरी की माँ गुलरी काकी प्रसन्न होकर गोधन को शाम के भोजन का निमंत्रण देती है। पंच भी अति उत्साहित होकर गोधन से कहते हैं - 'तुम्हारा सात खून माफ। खूब गाओ सलीमा का गाना।' पंचलाइट की रोशनी में लोग भजन कीर्तन करते हैं तथा पंचलाइट की रोशनी में गाँव में उत्सव मनाया जाता है। प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आवश्यकता किसी भी बुराई को अनदेखा कर देती है। वर्तमान समाज में भी ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जो कि अपने-अपने स्वार्थ-लाभ केलिए सभी व्यवस्था एवं संस्कृति को उलट-पलट करते हैं। कथानक संक्षिप्त, रोचक, सरल, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक और यथार्थवादी है। कौतूहल और गतिशीलता के अलावा इसमें मुनरी तथा गोधन का प्रेम-प्रसंग बड़े स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

आवश्यकता किस प्रकार बड़े-से-बड़े संस्कार और निषेध को अनावश्यक सिद्ध कर देती है, इसी केंद्रीय भाव के आधार पर कहानी के माध्यम से एक महत्वपूर्ण उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है। गोधन द्वारा पेट्रोमैक्स जला देने पर उसकी गलतियाँ माफ कर दी जाती हैं। उस पर लगे सारे प्रतिबंध हटा दिये जाते हैं तथा उसे मनचाहे आचरण की छूट दी जाती है। ग्रामवासी जाति के आधार पर गोधन को अपनी टोलियों में बैठे जाते हैं। वह आपस में ईर्ष्या-द्वेष के भावों से भरे रहते हैं। इसका बड़ा सजीव चित्रण कहानी में प्रस्तुत किया गया है। कहानीकार ने यह स्पष्ट किया है कि इस आधुनिक युग में अभी भी कुछ गाँव और जातियाँ पिछड़ी हुई हैं। कहानी का कथानक सजीव है। सीधे-सादे अनपढ़ लोगों की संवेदनाओं को वाणी देने में रेणुजी समर्थ रहे हैं। प्रस्तुत कहानी द्वारा रेणुजी ने अप्रत्यक्ष रूप से ग्राम-सुधार की कोशिश की है। इसके साथ-साथ यह संदेश भी दिया है कि आवश्यकता बड़े-से-बड़े संस्कार और निषेध को अनावश्यक सिद्ध कर देती है। इसी केंद्रीय भाव के आधार पर कहानी के माध्यम से एक महत्वपूर्ण उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है। डॉ.सत्यदेव त्रिपाठी के अनुसार अब भी कोई ज़रूरत है पार्टी के सिद्धांतों व नैतिकता के बारे में कुछ कहने की, 'अब भी क्या इसे ठुमरीधर्मा और आंचलिक कहानी कहा जा सकता है? जाति के माध्यम से यह जातिय-राष्ट्रीय चरित्र को पंचलाइट की रोशनी में उजागर कर देती है। यह लाइट पंचों की, लोगों की ही है न।"[5]

(शेष पृ.सं. 50)

कहानीकार फणीश्वरनाथ रेणु

♦ रंजिताराणी.के.वी

कहानीकार प्रेमचंद जी के अनुसार "कहानी वह द्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफ़िल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य में परिपूरित कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।"[1] यह कथन रेणु जी की कहानियों पर भी लागू है। नई कहानी दौर के लेखक होने पर भी इनका प्रयास ग्रामीण अंचल व वहाँ की निरीह जनता का स्वाभाविक चित्रण रहा, जिसमें कहानी उनके लिए एक माध्यम बनी। रेणु जी को 'आंचलिक कथा के पुरोधा','आज़ादी के बाद का प्रेमचंद' आदि संज्ञाओं से भी अभिहित किया जाता है।

कहा गया है-'मनुष्य जाति के लिए मनुष्य ही सबसे विकट पहेली है।'[2] वर्तमान कहानियों में जीवन-यथार्थ का मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक चित्रण देखने को मिलता है। यूँ तो "अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है।"[3] रेणु जी बिहार के 'पूर्णिया' जिले के 'औराही हिंगना' गाँव से हैं, इनकी कहानियों में स्थानीय संस्पर्श हैं, भोगे हुए यथार्थ का चित्रण है, अनुभूति की प्रामाणिकता है।

'पंचलाइट' कहानी एक घटना प्रधान कहानी है, जो गाँव में पहले पहल पेट्रोमैक्स खरीदे जाने के प्रसंग से जुड़ा है। अफ़्सोस कि उस गाँव में कोई उसे बालना नहीं जानता। ऐसे में दूसरे गाँव से आकर बसा हुआ गोधन काम आता है, जिसका सरपंचों ने दावत न देने और 'मुनरी' को 'सलीमा का गाना' गाकर छेड़ने के कारण गाँव से हुक्का पानी बंद कर दिया था।सरदार यह कहकर उससे मदद माँगता है कि जाति का बंधन क्या,जबकि जात की इज़्जत ही पानी में बही जा रही है।

'ठेस' एक चरित्र प्रधान कहानी है। यह बिना मज़दूरी के पेट भर भात पर काम करनेवाले कारीगर सिरचन की कहानी है, जो बात में ज़रा सा झाल बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह मोथी के घास ओर पटरे की रंगीन शीतलपाटी, बाँस की तीलियों की झिलमिलाती चिक,हलवाहों के लिए ताल के सूखे पातों की टोपी..और भी बहुत सारी चीज़ें जो शहरवालों को भी भाये इत्यादि बनाने में सिद्धहस्त था। कालांतर में लेखक की हवेलीवाले ही उसकी कद्र करनेवालों में रह गये थे। ऐसे में लेखक की छोटी बहन पहली बार ससुराल जा रही होती है और उसके पति की माँग पर फैशनबुल चिक और शीतलपाटी बनवाने के लिए सिरचन को बुलाया जाता है। लेखक की मंझली भाभी और चाची उस पर व्यंग्य कसते हैं,अपमान न सहकर वह काम अधूरा छोड़कर चला जाता है। अंत में, विदाई के वक्त सारी चीज़ें बनाकर बिन किसी को बताए वह मानू याने लेखक की छोटी बहन को रेलवे स्टेशन पर दे आता है।

'तीसरी कसम' कहानी पर गीतकार शैलेन्द्र के निर्देशन में फ़िल्म बनी थी(1966)।

'हिरामन' गाँव का एक निरीह, शरीफ़ गाड़ीवान है। उसके कटु अनुभवों ने उससे दो कसम करवाए (एक) चोरी का माल न लादना, (दो) बाँस की लकड़ी न ढ़ोना। वह 'फारबिसगंज' के मेले पर जाता था,लेकिन कभी कोई नाटक देखने नहीं गया। एक दिन 'मथुरामोहन

नौटंकी कंपनी' में लैला का किरदार अदा करनेवाली 'हीराबाई' उसकी सवारी पर बैठती है। गाड़ीवान उसके पेशे के बारे में न जानता है, न जानने की कोशिश करता है। हिरामन को बाई की कुलीनता और विलायती भाषी भा जाती है और हीराबाई को गाड़ीवान की सादगी,व्यावहारिक ज्ञान अच्छे लगते हैं,वह उसे अपना गुरु कहती है। दोनों में नज़दीकी बढ़ती है। हीराबाई हिरामन को नाटक देखने को मना लेती है। उस दरमियान उसे औरों से बाई के बारे में छेड़खानी सुननी पड़ती है। वह चिढ़ जाता है।अंत में, हीराबाई की सच्चाई जानने पर हिरामन की प्रतिक्रिया क्या होगी,यह सोचकर वह दूसरी कंपनी में चली जाती है,गाड़ीवान को गैर की तरह चादर खरीदने के पैसे भी थमा देती है।हिरामन मायूस हो जाता है।आगे से ऐसे किसी को सवारी पर न ले जाने की कसम खाता है।

'लालपान की बेगम' स्त्री की छोटी-छोटी इच्छाओं की पूर्ति पर उसमें होनेवाले परिवर्तन को केन्द्र में रखकर रची गई कहानी है। यह भी उपर्युक्त कहानी की तरह चरित्र-प्रधान है। इसमें गाँव में माँ को नाम से न पुकारकर, बच्चे के नाम ले बुलाने की परिपाटी की ओर संकेत है। बिरजू के घर में उनके खुदके के बैल होते हैं। अतबिरजू की माँ 'बलरामपुर' जाकर बच्चों सहित नाच देखने के लिए अपने पति को मना लेती है। यह बात वह 'मखनी फ़ुआ' और अन्य लोगों से साझा करती है। पर देर तक इंतज़ार करने पर भी पति नहीं आते, फुआ पूछ्ती है तो वह उनसे उलझती है। फुआ उसके बारे में भला-बुरा कहती है। अंत में पति आते हैं, 'बिरजू की माँ' याने कि बेगम खाना नहीं बनाई होती है,पर पति तारीफ़ करते हैं कि टोकरी भर रोटी तो वह पलक मारते बना देती,पाँच रोटियाँ बनाने में कितनी देर लगेगी तो झटपट वह सारा काम निपटा लेती है। फुआ को भी पान खिलाती है। गाड़ी में जिन-जिन को नाच देखना होता है, सबको लेकर वे निकल पड़ते हैं।

'संवादिया' भी एक चरित्र प्रधान कहानी है। गाँव में डाकघर के आने पर संदेशवाहक 'हरगोबिन' का काम मंद पड़ जाता है। ऐसे में गाँव की पुरानी नामी हवेली की 'बड़ी बहुरिया', जो वहाँ पति की मृत्यु और जायदाद के बँटवारे के बाद अकेली रहती है, हरगोबिन को बुला भेजती है। उसे दाने-दाने के लिए मोहताज होना पड़ा तो वह मायके में लौटकर शेष जीवन बिताना चाहती है। यह गुप्त संदेश हरगोबिन के हाथों वह भिजवाने की कोशिश करती है। हरगोबीन संदेश लेकर जाता ज़रूर है,पर संदेश दिये बिना लौट आता है, यह सोचकर कि बड़ी बहुरिया को हरगोबिन के अपने गाँव में खाना तक नसीब नहीं हो रहा,यह कहना गाँव काअपमान करना होगा। अतः वह बहुरिया की ज़िम्मेदीरी अपने ऊपर लेता है।

उपर्युक्त कहानियों में हम देखते हैं कि पात्र या घटना के परिचय से ही कहानियों की शुरुआत हुई है। जैसे 'लालपान की बेगम' का यह उदाहरण देखिए, 'क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जाएगी क्या? बिरजू की माँ शकरकंद उबाल कर बैठी मन-ही-मन कुढ़ रही थी।' रेणु जी की कहानियों में शब्द तौल-तौलकर रखे हुए से मालूम पड़ते हैं, जैसे 'पंचलाइट' कहानी का यह प्रारंभिक अंश- पिछ्ले पंद्रह दिनों से दंड-जुरमाने के पैसे जमा करके महतो टोली के पंचों ने पेट्रोमेक्स खरीदा है इस बार, रामनवमी के मेले में। 'यहाँ बिना किसी पूर्व कथन के सीधे घटना का वर्णन किया गया है। कहानी-लेखन के लिए कुछ शर्तें रखी जाती है, जैसे कि कहानी बहुत कम शब्दों में रची जाए,पहला वाक्य ही मन को आकर्षित करे,अंत तक वह पाठक को डुबाये रखे,उसमें चटपटापन हो और तत्व भी।मेरे ख्याल से ये सारी खूबियाँ रेणु जी

की कहानियों में निहित हैं। कहानियों में इनके द्वारा बुने गये संवादों में चटपटापन है, जैसे 'तीसरी कसम' से यह संवाद देखिए "भैया,तुम्हारा नाम क्या है? हू-ब-हू फेन गिलास...हिरामन के रोम-रोम बज उठे। मुँह से बोली नहीं निकली। उसके दोनों बैल भी कान खड़े करके इस बोली को परखते हैं। 'मेरा नाम....नाम मेरा हिरामन!' एकतथ्यात्मकता, मनोवेगों का मार्मिक चित्रण एवं भावों की आकस्मिकता और तीव्रता, स्वाभाविक भाषा-शैली आदि सार्वभौमिक आकर्षण व पात्रों से तादात्म्य प्राप्त कराने में सहायक है। 'संवादिया' कहानी का उदाहरण देखिए - "उसने धीरे से हाथ बढ़ाकर बहुरिया का पैर पकड़ लिया, बड़ी बहुरिया।...मुझे माफ करो। मैं तुम्हारा संवाद नहीं कह सका।...तुम गाँव छोड़कर मत जाओ। तुमको कोई कष्ट नहीं होने दूँगा। मैं तुम्हारा बेटा! बड़ी बहुरिया,तुम मेरी माँ, सारे गाँव की माँ हो!"। रेणु जी की किस्सागो शैली बहुत लुभावनी है। सारे पात्र सामान्य मानव के प्रतिनिधि हैं। लोकगीत, ठेठ देहाती बोली आदि इन कहानियों का खास आकर्षण है। अतः हम कह सकते हैं कि रेणु जी अमर साहित्यकार हैं, जिन्होंने साहित्य को देशी मिट्टी के रंग में रंगाकर और ग्रामीण बोली के माध्यम से ग्रामीण नब्ज़ को अनादि काल के लिए धड़कने दिया।

संदर्भ

1.कुछ विचार, प्रेमचंद, लोकभारती प्रकाशन, 2006, पृ.28

2.वही- पृ.31 3.वही- पृ.32

4. पंचलाइट, ठेस, तीसरी कसम- 'ठुमरी' संग्रह, राजकमल प्रकाशन।

♦ अध्यापिका,
सरकारी हायर सेकेंडरी स्कूल, नारायमुट्टम।

(पृ.सं.28 के आगे)

बीत जाने से घरवाले ने गाँव लौटने की बात कही। तब कहती है- "हाँ, जब आ गई हूँ तो यहाँ हो चाहे लहेरिया सराय,चाहे कलक्त्ता...जहाँ से हो,कोख तो भरके ही लौटूँगी,गाँव तुमको जाना हो तो माधो बाबु टिकट कटा कर गाडी में बैठा देंगे। मैं किस मुँह से लौटूँगी खाली....?"(पृ.173) इस तरह कहानी समाप्त होती है।

बिल्कुल आँचलिक परिवेश में रतनी और माधो बाबू से कहानी शुरू करके गाँव के प्रत्येक क्रिया-कलापों के वाक्चित्र खींचा गया है। मनुष्य विवेकशील प्राणी है। विवेकशीलता का प्रतीक है जीभ। जीभ के दो पक्षों को रतनी में पाठक देखते हैं। एक पक्ष पात्र के अनुरूप सहज है, तो दूसरा पक्ष परम पवित्र आध्यात्मिक धरातल पर है। 'भला आदमी' की संकल्पना को ठेस पहुँचाती है रतनी। रतनी की संकल्पना पर शहर से आये माधो बाबू परेशान होते हैं। लेकिन संभ्रांत माधो बाबू को रतनी यानी नैना जोगिन स्त्री का 'उदात्त' भाव दिखलाती है। शहरी संस्कृति का परिचय रतनी देती है, तो गाँव से शहर आये व्यक्ति का घुटन रतन धन में पाठक देखते हैं। प्रस्तुत कहानी के द्वारा रेणुजी ने हाशि एकृत समाज का, विशेषकर दलित नारी का शोषण, उसकी असुरक्षा, बेसंतान नारी के प्रति समाज की मानसिकता आदि संवेदनशील पात्र माधो बाबू के द्वारा उघाड़ने का सफल प्रयास किया है। सरल एवं सहज भाषा का प्रयोग कहानी को आस्वादन योग्य बनाता है।

संदर्भ

'नैना जोगिन' कहानी, 'आदिम रात्रि की महक' संकलन, राधाकृष्ण प्रकाशन।

♦ असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
श्रीशंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों की भाषा

♦ रेश्मा .एम .एल

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों की शिल्प-संरचना की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि 'भाषा' है। रेणु के उपन्यासों की भाषा अपभ्रंश मिश्रित है। तद्भव शब्दों की बहुलता से युक्त काव्यमयी भाषा है। फणीश्वरनाथ रेणु जी ने अपने उपन्यासों की भाषा के बारे में डॉ.लोठार लुत्से को दिये गये साक्षात्कार में कहा है- "देखिए, यों जब साधारण जनता की बात कहनी हो, जब वे लोग बोलते हैं तब तो जाहिर है कि अपने गाँव की बोली में बोलते हैं, मैथिली में बोलते हैं, मगही में बोलते हैं। मुझको लिखना पड़ रहा है उसकी हिंदी में। तो अगर मैं उसको शुद्ध व्याकरण सम्मत और पण्डिताउ भाषा में लिखता हूँ तो यह तो खुद कान में कैसा लगेगा कि यह गाँव का आदमी किस तरह से बोलता है। इतना शुद्ध बोलता है और बिल्कुल वैसा या अशुद्ध लिखने से यह उपन्यास नहीं चल सकता है तो बीच का कहीं एक रास्ता तैयार करना होगा। तो जो वे लोग बोलते हैं कचहरी वचहरी में, कचराही बोली कहते हैं उसे। कचहरी की खिचड़ी भाषा में बोले जाने से कचहरी बोली मैं ने इस्तेमाल किया है इसी कचराही बोली का। है वह खड़ीबोली ही, लेकिन थोड़ा-सा शब्दों को हेर-फेर कर देने से आपको सुनने में लगेगा कि उसकी लय पकड़ में आ जाती है। वह ख़डीबोली लेकिन लय उसकी अपनी है।"

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में मुहावरों-कहावतों के प्रचुर प्रयोग देखने को मिलते हैं। रेणु ने सांकेतिकता और लक्षणात्मकता के माध्यम से मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। 'मैला आँचल' में ग्रामीणता की गंध है। इसमें मुहावरों और कहावतों की अधिकता स्वाभाविक है। 'मैला आंचल' में प्रयुक्त प्रमुख कहावतों में कुछ हैं 'दो भौसों की लड़ाई दूब के सिर आफत', 'भक्तिभाव न जाने भोंदू', 'जारू जमीन जोर का, नहीं तो किसी और का'। प्रमुख मुहावरों में कुछ हैं - आंचल मैला करना , गाँव के कुत्ते भूकना, एकदम खलास हो जाना, अंधों का काना बनकर लीडरी करना। 'मैला आँचल' में कई स्थानों की भाषा काव्यमयी है। सुंदर सुंदर सूक्तियाँ भी हैं। 'परती परिकथा' भी अंचल विशेष का उपन्यास है। इस उपन्यास में भोजपुरी और खड़ीबोली की कहावतों की प्रचुरता है। इस उपन्यास के द्वारा मनुष्य को सामाजिक बनाना और समाज को मानवीय बनाने का प्रयत्न है। कुछ कहावतें इस प्रकार हैं- 'गोल भेंस पानी में', 'लड्डू लड़े तो बुदिया झरे', 'कछुए हो जाना', 'फिर से बाल काल होना', 'बेपानी कर देना' आदि। 'दीर्घतपा' उपन्यास में भी कहावतों और मुहावरों का प्रचुर प्रयोग है। कहावतों में कुछ इस प्रकार हैं- 'रोटी दोनों हाथों से पकती है', 'जाने तो और जाने जाता'। मुहावरों में कुछ हैं- 'नीबू नून चटा देना', 'बालू की दीवार बनाना' आदि। 'जुलूस' उपन्यास में भी मुहावरों और कहावतों का प्रचुर प्रयोग है। कहावतों में कुछ हैं- 'जब संग में ही जल तो मछली का क्या अकाल', 'काला अछर भैंस बराबर' आदि। 'कितने चौराह' और 'पलटू बाबू रोड' में भी कहावतों-मुहावरों का प्रसंगानुकूल प्रयोग किया गया है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रचुर प्रयोग से रेणु की भाषा में अर्थगंभीरता, लाक्षणिकता और सांकेतिकता का अद्भुत संयम है।

रेणु के अपने आंचलिक उपन्यासों में प्रयुक्त

लोकगीतों में लयात्मकता है। लोक गीतों में भाव लय या अर्थ लय की प्रधानता है। अर्थलय के बारे में डॉ.जगदीश गुप्त कहते हैं 'आवर्तन, विवर्तन और गहराई से युक्त गतिशीलता जो एक संबंध प्रवाह रूप में परिभाषित होती है, शब्द और लय दोनों में लय रूप में व्याप्त हो जाती है, अर्थ लय का यही तात्विक आधार है'। लोकगीतों का एक अनिवार्य घटक लय है। लय नहीं तो गीत का कोई अस्तित्व भी नहीं है। लय के कारण गीत में संगीतात्मकता आ जाती है। प्रत्येक लोक शब्द की अपनी एक संगीतात्मकता होती है। रेणु के लोकगीतों में भाषा की घुलनशीलता है। रेणु द्वारा प्रयुक्त लोकगीतों में लयात्मकता का गुण विद्यमान है।

रेणु ने अपने उपान्यासों के लिए शब्द-चयन बड़ी सूक्ष्मता से किया है। ग्राम्य जीवन की सार्थक अभिव्यक्ति के लिए रेणु ने जो-जो शब्द चने वे सब प्रसंगानुकूल और प्रभावोत्पादक हैं। रेणु ने शब्द-चयन पांडित्य प्रदर्शन के लिए नहीं, आंचलिक जन-जीवन की सार्थक अभिव्यक्ति के लिए किया है। स्थानीय बोलियों के शब्दों का प्रयोग रेणु के उपन्यासों में देखने को मिलता है- 'मैला आँचल' उपन्यास में प्रयुक्त स्थानीय बोली के शब्दों में कुछ इस प्रकार हैं- कनिया मतलब दुल्हन , हल्दी बोला अर्थात् पराजित करना, जल्खे अर्थात जलपान, मडर अर्थात मालिक आदि। 'परती परिकथा' में प्रयुक्त कुछ स्थानीय शब्द इस प्रकार हैं- चाउर अर्थात् चावल, बेमान अर्थात् बेईमान, खपसूरती अर्थात् खूबसूरत, राजनीयत अर्थात् राजनीति आदि। 'दीर्घतपा' में प्रयुक्त स्थानीय शब्द हैं- रेबाज अथात् रियाज़, समापत अथात् समाप्त, मौगि अथात् पत्नी, पान अथात् शराब पार्टी आदि। 'जुलूस' में प्रयुक्त कुछ स्थानीय शब्द हैं- पालेवत अर्थात् मित्र, गनना अर्थात् गणना, गन्जर अर्थात् मार, खटुडा अर्थात बदमाश आदि। 'कितने चौराहे ' में प्रयुक्त कुछ स्थानीय शब्द इस प्रकार हैं- दबन अर्थात् मड़ाई, खचडा अर्थात् खचर, शिगिर अर्थात् शीघ्र आदि। 'पलटू बाबू रोड' में प्रयुक्त कुछ स्थानीय शब्द हैं- चाबास अर्थात् शाबाश, टान अर्थात् आकर्षण, खेचरन्न अर्थात् खिचड़ी आदि।

स्थानीय शब्दों के अलावा अंग्रेजी, बंगला, उर्दू आदि के शब्दों का इस्तेमाल भी रेणु के उपन्यास की भाषा को विविधतापूर्ण बनाता है। रेणु के उपन्यासों की भाषा आंचलिक क्षेत्र को उद्घाटित करने, पात्रों को अभिव्यक्त करने तथा घटनाओ को और सशक्त बनाने का कार्य करती है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी कहते हैं- 'उनके उपन्यास आंचलिक भाषा को छोड़कर यदि ख़डीबोली में लिखे जायें तो उनके प्रभाव में किसी प्रकार की कमी आएगी'। जवाब के रूप में उमा शंकर जोशी ने कहा है 'मैला आंचल में बोला जानेवाला शब्द उत्कृष्ट रूप में प्रयोजित हुआ है'। रेणु का उपन्यास शिष्ट भाषा में नहीं लिखा जा सकता था।

रेणु की भाषा में अनेक भाषाओं और बोलियों के शब्दों का सुंदर समन्वय है। रेणु जी की भाषा अत्यन्त सरल, सहज एवं प्रवाहपूर्ण है। उनकी भाषा में चित्रात्मकता एवं काव्यात्मकता के गुण हैं। उनकी भाषा में काव्य की-सी गति, कोमलता और प्रवाह मिलता है। उनकी भाषा में भावों को स्पष्ट कर देने की क्षमता भी विद्यमान है। सरस मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग तथा भावपूर्ण संवादों के प्रयोग ने उनकी भाषा को सशक्त बनाया है।

सहायक ग्रंथसूची

1) रेणु से भेंट (संपादक भारत यायावर), डॉ.लोठार तुस्से द्वारा लिया गया साक्षात्कार, पृ.7475
2)हिंदी साहित्य कोश, संपादक-धीरेंद्र वर्मा, पृ.549

3)आलोचना,अंक-24, नन्दुदुलारे वाजपेयी, पृ.8
4)क्षितिज, फरवरी 1963, उमाशंकर जोशी, पृ.582

◆ शोध छात्रा, हिन्दी विभाग,
कोच्चिन विश्वविद्यालय

(पृ.सं.44 के आगे)

रेणुजी की कहानी में जिस तरह गाँव की जीवन-स्थितियाँ व उपभोक्ता संस्कृति की पृष्ठभूमि उभरकर सामने आती हैं, उसी तरह शायद ही अन्य कहानियों में देखा जाए। अनुभूति की सच्चाई और भोगे हुए यथार्थ को समकालीन कहानी की मुख्य प्रवृत्ति मानते हैं। रेणु ने अपने गाँव में जिस यथार्थ को भोगा उसी को कहानियों के द्वारा चित्रित किया। रेणु का सम्पूर्ण जीवन एक संवेदनशील जागरूक कलाकार का रहा है जो अपने समय के अच्छे-बुरे समस्त प्रभावों को झेलता और ग्रहण करता है।[6] रेणु ने गाँववालों के जीवन की आशा-निराशा, दुख-दर्द आदि पर लेखनी चलायी। ग्रामीण जनता के जीवन का परिचय पाठकों को देना ही उनका लक्ष्य था। अपने समकालीन कथाकारों में वे किसी से न छोटे हैं न बड़े, वरन् वे केवल रेणु हैं, अकेले रेणु। ऐसे रेणु जिनका स्थान न तो कोई ले सकता है, न ही वह किसी के स्थान पर बैठने की चेष्टा करते हैं।[7] उपेक्षित ग्रामीण जनता के प्रति पाठकों के दिलों में सहानुभूति जगाने में वे सक्षम हुए। उनकी कहानियाँ तात्विक आधार पर, जीवन के यथार्थ की दृष्टि से, संवेदना और आंचलिकता की दृष्टि से अपना अलग स्थान रखती हैं और समकालीन कथाकारों में उन्हें प्रतिष्ठित कथाकारों की श्रेणी में स्थापित करती हैं।

संदर्भ

1 संग्रथन, अंक-अप्रैल 2009, हिन्दी विद्यापीठ (केरल), तिरुवनंतपुरम, पृ.सं. 28
2 हिन्दी ग्राम्य कहानियों के रचनात्मक स्वर; डॉ.कामेश्वर प्रसाद सिंह, वीरेंद्र कुमार सिंह गहरवार; विजय प्रकाशन, वारणासी, प्रकाशन; वर्ष 1989; पृ.सं.11
3 संग्रथन, अंक-फरवरी 2007, हिन्दी विद्यापी (केरल), तिरुवनंतपुरम, पृ.सं.21
4 फणीश्वरनाथ रेणु का कथा शिल्प; रेणुशाह; राजस्थानी ग्रंथकार, जोधपुर; 1990, पृ.सं. 185
5 फणीश्वरनाथ रेणु सृजन और संदर्भ-डॉ.सत्यदेव त्रिपाठी, पृ.सं.150
6 फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य, परिवर्तनमान सामाजिक चेतना के संदर्भ सहित; वीरेंद्र नारायण सिंह, पृ.सं.26
7 फणीश्वरनाथ रेणु व्यक्तित्व एवं कृतित्व; हरीशंकर दुबे; विकास प्रकाशन, कानपुर; संस्करण- प्रथम 1992; पृ.सं.135

आधार

'पंचलाइट' कहानी, 'ठुमरी' कहानी संकलन; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना।

◆ विभागाध्यक्षा एवं असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग
के एस एम डी बी कॉलेज,
शास्तांकोट्टा, कोल्लम जिला, केरल राज्य।

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,
Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha